कथं पुनरिदम्भगवतः पाणिनेराचार्यस्य ... त्तम्।

सन्धिविषये ॥ [illegible]

त होवे कि जो अन्त्य वर्ण दकार है उस के स्थान में अकारादेश नित्य
जाता है। जैसे। स्यः। सः। यः। इदम्। तेभ्यः। इत्यादि ॥८८॥

६१ ङिच्च ॥ ८९ ॥ १।१।६७ ॥

जो ङित् अर्थात् जिस का ङकार इत् जाय ऐसा अनेकाल् भी
आदेश अन्त्य अल् के स्थान में हो। यहां पूर्व सूत्र की अनुवृत्ति आती
है जैसे। अनङ्। होतापोतारौ। मातापितरौ। यहां अनङ् आदेश
अन्त्य अल् ऋकार के स्थान में होता है। (१६४) यह सूत्र अपवाद
है। (प्र०) तातङ् आदेश अन्त्य अल् के स्थान में प्राप्त है सो
क्यों नहीं होता ? ॥ ८६ ॥

१६२ (उ०)भा०—एवंतर्ह्येतदेव ज्ञापयति न तातङन्त्यस्य स्थाने
भवतीति—यदेतं ङितं करोति। इतरथाहि लोट एरुदेवा
... ब्रूयात् तिह्योस्तादाशिष्यन्यतरस्याम् ... मनुष्य लोगों
... पढ़ने चाहिये क्यों
कि इन के पढ़ने ही से महाभाष्यकार ... आगम और वर्णविकार आदि का यथा-
वत् बोध हो कर वेदों की रक्षा कर सकते हैं (ऊहः) वेदों में सब लिङ्ग
सब विभक्ति सहित शब्दों के प्रयोग नहीं किये हैं उन का बोध व्याक-
रणादि शास्त्र के विज्ञानपूर्वक तर्क के विना यथावत् कभी नहीं हो
सकता (आगमः) सब मनुष्यों को अवश्य उचित है कि साङ्गोपाङ्ग वेदों
को पढ़ कर यथोक्त क्रिया करके सुख लाभ को प्राप्त हों सो व्याकरणादि
के पढ़े विना कभी नहीं हो सकता क्योंकि सब विद्याओं की प्राप्ति
करने में व्याकरण ही प्रधान है प्रधान में किया हुआ पुरुषार्थ सर्वत्र

महालाभकारी होता है (लघु) मनुष्यों को अवश्य उचित है कि वेदादि शास्त्रों के सब शब्द अर्थ और सम्बन्धों को जानें सो व्याकरणादि के पढ़े विना थोड़े परिश्रम से पूर्वोक्त पदार्थों का सहज से यथावत् जानना नहीं हो सकता (असन्देहः) मनुष्य व्याकरणादि को पढ़ के ही शब्दार्थ सम्बन्धों को निस्सन्देह जान सकता है (तेऽसुराः) जो मनुष्य व्याकरणादि शास्त्रों की शिक्षा से रहित होते हैं वे हलना गुल्ला करके अप्रतिष्ठित हो कर नीचता को प्राप्त हो जाते और जो व्याकरणादि की सुशिक्षा से युक्त होते हैं वे श्रेष्ठता से संपन्न होते हैं (दुष्टःशब्दः) स्वर और वर्ण के विपरीत करने से शब्द दुष्ट और वज्र के समान होकर वक्ता के अभिप्राय को विपरीत कर देता है और जो व्याकरणादि को पढ़ के यथावत् स्वर और वर्णोच्चारण करते हैं वे ही पण्डित कहाते हैं [यदधीतम्] जो मनुष्य अर्थ ज्ञान के विना पाठ मात्र ही पढ़ते जाते हैं उन के हृदय में विद्यारूप सूर्य्य का प्रकाश कभी नहीं होता और जो व्याकरणादि शास्त्रों को अर्थ सहित पढ़ते हैं वे ही सूर्य्य के प्रकाश समान विद्यारूप प्रकाश को प्राप्त हो कर अन्य मनुष्यों को इन की प्राप्ति करा के सर्वदा आनन्दित रहते हैं [यस्तुप्रयुङ्क्ते] जो मनुष्य विशेष व्यवहारों में शब्दों के प्रयोग ज्यों के त्यों करते हैं वे ही अनन्त विजय को प्राप्त होते और जो ऐसा नहीं करते वे सर्वत्र पराजित हो कर सर्वदा दुःखित रहते हैं [अविद्वांसः] जो विद्याहीन मनुष्य होते हैं वे सभा, तथा बड़े छोटे मनुष्यों के संग में भाषणादि व्यवहारों को यथावत् नहीं कर सकते उन को विद्वानों की सभा में स्त्री के समान लज्जित होना पड़ता और जो विद्वान् होते हैं वे पूर्वोक्त व्यवहारों को यथावत् करके सर्वत्र प्रशंसा को प्राप्त होते हैं [विभक्तिङ्कुर्वन्ति] जो विद्वान् होते हैं वेही यज्ञकर्म्म अथवा सभा के बीच में यथायोग्य विभक्ति

सहित शब्दों के प्रयोग कर सकते और जिन्हों ने व्याकरणादि शास्त्र पढ़े नहीं होते वे इस में समर्थ नहीं हो सकते [योवा इमाम्] जो मनुष्य पद स्वर और अक्षरों की शुद्धतापूर्वक उच्चारण करके अपनी वाणी को पवित्र करता है वही यज्ञ और सभा आदि व्यवहारों में मान्य को प्राप्त होता है [चत्वारि] जिस के आत्मा में शब्द विद्या प्राप्त होती है वही महाविद्वान् हो कर अपने और अन्य सब मनुष्यों के कल्याण करने में समर्थ होता है [उतत्वः] जो मनुष्य व्याकरणादि विद्या को नहीं पढ़ता वह विद्यायुक्त वाणी के दर्शन से रहित हो कर देखता अन्धे और सुनता बहिर के समान होता और जो इस विद्या के स्वरूप को प्राप्त होता है उसी को विद्या परमेश्वर से ले कर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों का स्वरूप यथावत् जना देती है [सक्तुमिव] जैसे चलनी से सतू को छान कर मैदा और भूसी अलग २ कर देते हैं वैसे जो मनुष्य विद्यायुक्त होते हैं वे सत्याऽसत्य का विवेक करके सत्य ग्रहण और असत्य का त्याग ठीक २ कर सकते हैं [सारस्वतीम्] जब मनुष्य अविद्वान् होते हैं तब भ्रान्ति युक्त हो कर सभा और यज्ञशालादि के व्यवहारों में अनृतभाषण कर दूषित होजाते और जो व्याकरणादि शास्त्रों को पढ़ कर वेदोक्त व्यवहारों को यथावत् करते हैं वे ही सुभूषित हो कर सर्वत्र प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं (दशम्यां पुत्रस्य) मनुष्यों को अवश्य है कि अपने सन्तानों का नाम जन्म से दशवें दिन शास्त्रोक्त रीति से रक्खें परन्तु शास्त्रों के पढ़े विना नाम में दो वा चार अक्षर और वे वर्ण किस प्रकार के हों इत्यादि नहीं जान सकते और जो विद्वान् होते हैं वे तो शास्त्रोक्त प्रमाणों को जान कर उक्त व्यवहार को यथावत् कर सकते हैं (सुदेवो असि वरुण इति) जैसे विद्वान् लोग सब शास्त्रों को पढ़ कर सत्यदेव कहाते हैं वैसे हम भी हों इत्यादि

प्रयोजनों के लिये शास्त्रों को पढ़ना सब मनुष्यों को अवश्य चाहिये ये १८ अठारह प्रयोजन यहां संक्षेप से लिखे हैं किन्तु इन को प्रमाण और विस्तार पूर्वक अष्टाध्यायी की भूमिका में लिखेंगे सन्धि और संहिता ये दोनों एकार्थ हैं ॥

(प्र०) संहिता किस को कहते हैं ?

(उ०) परः सन्निकर्षः संहिता। शब्दाविरामः। न्हादाविरामः। पौर्वापर्य्यमकालव्यपेतं संहिता। अ० १। पा० ४। सू० १०९। आ० ४।

जहां पूर्व वर्ण वा पदों को पर के साथ उच्चारित शब्द ध्वनि और काल का व्यवधान न हो उस को संहिता कहते हैं कि जहां अक्षरों के साथ अक्षर पदों के साथ पद और वाक्यों के साथ वाक्य मिला कर उच्चारण किये वा लिखे जाते हैं जैसे अ, अ ये दोनों मिल कर आ और अ, इ मिल कर ए इत्यादि अक्षरों। धर्म्मार्थकाममोक्षाः। इत्यादि पदों और "अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्" इत्यादि वाक्यों की संहिता कहाती है (प्र०) अवसान किस को कहते हैं ? (उ०) विरामोऽवसानम्। अ० १। पा० ४। सू० ११० । जहां क्रिया वर्ण का अभाव और व्यवधान हो उस को अवसान कहते हैं क्योंकि। वाक्यं वक्त्रधीनं हि। वाक्य वक्ता के आधीन होता है चाहे संहिता करे चाहे अवसान करे परन्तु इस में यह नियम समझना अवश्य है कि एक पद समास और धातु तथा उपसर्ग के योग में तो संहिता ही करनी और वाक्य में संहिता तथा अवसान दोनों पक्ष शुद्ध हैं सो चार प्रकार का होता है स्वर, हल्, हल्, स्वर और अयोगवाह सन्धि। स्वरसन्धि उस को कहते हैं कि जहां दो वा अधिक स्वर मिल कर एक हो जा

हैं जैसे अ—अ। आ। अ—इ। ए इत्यादि। हल्सन्धि उस को कहते
हैं कि जहां हल् से परे हल् का मेल हो जाता है जैसे। कार्त्स्न्यम्।
यहां र् त् स् न् य् मिले हैं। हल्स्वरसन्धि उस को कहते हैं कि
जहां अच् और हल् का मेल होता है जैसे क्—अ। क ... सज्ञा
अयोगवाह सन्धि उस को कहते हैं कि जिस ... इसी प्रकार (अच्
साथ जिह्वामूलीय उपध्मानीय ं कार ... औ) वर्णों का ग्रहण होता है
विसर्जनीय का मेल होता है। जिह्वा ... क् च् आदि आते हैं इन का
ꣻक्कर ꣻ खनति इत्यादि। उपध्मा ... सूत्रों के चौदह अन्त्य के हलों को
फलति इत्यादि। ह्रस्व ं कार ... यहां व्याकरण के चौदह सूत्रों में
सꣷ हितासि इत्यादि। अनुस्वार ... निम्नलिखित प्रकार से जानो जैसे अकार
तँꣷश्चिनोति इत्यादि। विसर्जनीय ... क्, अच्, अट्, अम्, अश्, अल्। इकार से ३
वाले ऐसी उत्तम रीति से इस ... कार से एक १ प्र० उक्। एकार से दो २
को यथावत् शीघ्र जान कर ... १ प्र० ऐच्। हकार से दो २ प्र० हल्, हश्।
हो कर शास्त्रों के पढ़ने ... यम्, यञ्, यय्, यर्। वकार से एक १ प्र० वश्।
रल्। ञकार से एक १ प्र० ञम्। मकार से एक १
से एक १ प्र० ङम्। भकार से चार ४ प्र० भष्, झय्,
... से एक १ प्र० भष्। जकार से एक १ प्र० जश्।
... बश्, बल्। छकार से एक १ प्र० छव्। खकार से
... चकार से दो २ प्र० चय्, चर्। शकार से दो २
... सब मिल कर एकतालीस ४१ प्र ... ते हैं।
प्र ... ते भोः। रा ...
... ॥ १८ ॥ १ । १ । १७ आयुष्मानेधीन्द्रवर्म्मन्
... श्। अभिवादये इन्द्रपालितोऽहम्। आयुष्मानेधीन्द्रपालित ३ इह।
कायुष्मानेधीन्द्रपालित। इत्यादि ॥ २१ ॥

८९ आदिरन्त्येन सहेता ॥ १७ ॥ १ । १ । ७० ।

जो २ इन सूत्रों में आदि वर्ण हैं वे इत्संज्ञक अन्त्य वर्णों के साथ संज्ञा बन कर मध्यस्थ वर्णों और अपने रूप को भी ग्रहण करने वाले होवें। जैसे अ इ उ ण् यहां आदि वर्ण अकार ण् के साथ संज्ञा को प्राप्त होता है सो अ इ उ का ग्राहक होता है इसी प्रकार (अच्) के कहने से (अ इ उ ऋ ऌ ए ओ ऐ औ) वर्णों का ग्रहण होता है और जो अच् प्रत्याहार के बीच में ण् क् च् आदि आते हैं इन का ग्रहण नहीं होता क्योंकि चौदह सूत्रों के चौदह अन्त्य के हलों की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है यहां व्याकरण के चौदह सूत्रों में जितने प्रत्याहार बनते हैं उन को निम्नलिखित प्रकार से जानो जैसे अकार से लेके ७ सात प्रत्याहार अण्, अक्, अच्, अट्, अम्, अश्, अल्। इकार से ३ तीन प्र० इक्, इच्, इण्। उकार से एक १ प्र० उक्। एकार से दो २ प्र० एङ्, एच्। ऐकार से एक १ प्र० ऐच्। हकार से दो २ प्र० हल्, हश्। यकार से पांच ५ प्र० यण्, यम्, यञ्, यय्, यर्। वकार से एक १ प्र० वश्। रेफ से एक १ प्र० रल्। ञकार से एक १ प्र० ञम्। मकार से एक १ प्र० मय्। ङकार से एक १ प्र० ङम्। झकार से चार ४ प्र० झष्, झय्, झर्, झल्। [illegible] से एक १ प्र० भष्। जकार से एक १ प्र० जश्। बकार [illegible] राजन्य [illegible] बश्, बल्। छकार से एक १ प्र० छव्। खकार से दो २ [illegible] । चकार से दो २ प्र० चय्, चर्। शकार से दो २ प्र० [illegible] सब मिल कर एकतालीस ४१ प्र[illegible]ते हैं।

[illegible] ॥ १८ ॥ १ । १ । १७ आयुष्मानेधीन्द्रवर्म्मन् [illegible] ! अभिवादये इन्द्रपालितोऽहं [illegible] । आयुष्मानेधीन्द्रपालित ३ इह । [illegible]आयुष्मानेधीन्द्रपालित । इत्यादि ॥ २७ ॥

णीञ्, ण्वुल्, सु (यो नयति सः) नायकः। शिव, अण्, सु, शैवः। उप गु, अण्, सु, । औपगवः ॥ १८ ॥

११ अदेङ् गुणः ॥ १९ ॥ १ । १ । १८ ।

ह्रस्व अकार एङ् अर्थात् ए ओ इन तीन वर्णों को गुण संज्ञा है जैसे तरिता, चेता, स्तोता, ॥ १६ ॥

१२ हलोऽनन्तराः संयोगः ॥ २० ॥ १ । १ । २२ ।

जिन के बीच में कोई स्वर न हो इस प्रकार के दो वा अधिक हलों की संयोग सञ्ज्ञा है जैसे। इन्द्रः। अग्निः। आदित्यः। इत्यादि॥२०॥

१३ मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः ॥ २१ ॥ १ । १ । २३ ।

कुछ मुख और कुछ नासिका से जिस वर्ण का उच्चारण हो उस को अनुनासिक सञ्ज्ञा हो जैसे, ञ, म, ङ, ण, न, इन पांच वर्णों अनुस्वार और अनुनासिक के चिन्ह को भी अनुनासिक कहते हैं ॥ २१ ॥

१४ तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् ॥ २२ ॥ १ । १ । २४ ॥

जिन वर्णों का कण्ठ आदि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न समान हो उन की परस्पर सवर्ण सञ्ज्ञा होती है। जैसे क ख ग घ ङ इत्यादि को सवर्ण सञ्ज्ञा है स्थान प्रयत्नों का विषय (वर्णो० २२—६८) में है ॥ २२ ॥

१५ नाज्झलौ ॥ २३ ॥ १ । १ । २५ ॥ हल् पढ़े

अच् हल् परस्पर सवर्ण सञ्ज्ञक न हों जैसे। [illegible] —श।
ऋ—ष [illegible] की परस्पर सवर्ण सञ्ज्ञा नहीं हो।
[illegible]वसान कर

[illegible]द समास और धातु : प्लुतउदात्तः ॥ २४ ॥ ८ [illegible]

और वाक्य में संहिता तथा अव[illegible]कार [illegible] पद शुद्[illegible] अर्थात् [illegible] चार प्रक[illegible]
का होता है स्वर, हल्, हल्, स्वर और अयोगवाह सन्धि। स्वरस[illegible]
उस को कहते हैं कि जहां दो वा अधिक स्वर मिल कर एक हो जा[illegible]

९७ प्रत्यभिवादेऽशूद्रे ॥ २५ ॥ ८ । २ । ८३ ।

प्रत्यभिवाद में वाक्य के टि को प्लुतउदात्त स्वर हो और शूद्र के प्रत्यभिवाद में न हो। जो पूर्व अभिवादन (नमस्कार) किया जाता है उस का जो उत्तर देने वाले की ओर से वाक्य होता है उस को प्रत्यभिवाद कहते हैं जिस के आगे तीन का अङ्क होता है वह प्लुत का चिन्ह समझा जाता है। प्लुत के तीन भेद हैं। प्लुतोदात्त। प्लुतानुदात्त। प्लुतस्वरित। उनका यहां क्रम से विधान करते हैं। अभिवाद अभिवादये देवदत्तोऽहम्भोः। प्रत्यभिवाद—आयुष्मानेधि देवदत्त ३ इति। इत्यादि। यहां अशूद्र ग्रहण इस लिये है कि। अभिवादये तुषजकोऽहम्भोः। आयुष्मानेधि तुषजक। यहां नहीं हुआ ॥ २५ ॥

९८—वा० अशूद्रस्त्र्यसूयकेष्विति वक्तव्यम् ॥ २६ ॥

शूद्र के अभिवाद में जो निषेध है वहां स्त्री और असूयक अर्थात् निन्दक के टि को भी प्रत्यभिवाद में प्लुतोदात्त न हो। जैसे। स्त्री-अभिवादये गार्ग्यहम्भोः। आयुष्मती भव गार्गि। वात्स्यहम्भोः। आयुष्मती भव वात्सि। असूयक—अभिवादये स्थाल्यहम्भोः। आयुष्मानेधि स्थालिन्। स्थाली किसी निन्दक की संज्ञा है ॥ २६ ॥

९९. वा०—भोराजन्यविशां वा ॥ २७ ॥

भो। राजन्य (क्षत्रिय) विश् (वैश्य) इन के प्रत्यभिवाद में जो वाक्य उसके टि को प्लुतोदात्त विकल्प करके हो। भो। देवदत्तोऽहम्भोः। आयुष्मानेधि देवदत्तभो ३ः इति। आयुष्मानेधि देवदत्त भोः। राजन्य। इन्द्रवर्म्माऽहम्भोः। आयुष्मानेधीन्द्रवर्म्म३न्। आयुष्मानेधीन्द्रवर्म्मन्। विश्। अभिवादये इन्द्रपालितोऽहम्भोः। आयुष्मानेधीन्द्रपालित ३ इह। आयुष्मानेधीन्द्रपालित। इत्यादि ॥ २७ ॥

१०० दूराद्धूते च ॥ २८ ॥ ८ । २ । ८४ ॥

जो दूर से बुलाने में वर्त्तमान वाक्य है उस के टि को प्लुतोदात्त हो। दूर शब्द से यहां क्या समझना चाहिये क्योंकि जो दूर है वही किसी के प्रति समीप भी होता है इस लिये ॥ २८ ॥

१०१भा०—यत्र प्राकृतात्प्रयत्नाद्विशेषेऽनुपादीयमाने सन्देहो भवति श्रोष्यति न श्रोष्यतीति तद्दूरमिहावगम्यते ॥ २९ ॥

जहां स्वाभाविक प्रयत्न से बुलाने में सुनने न सुनने का विशेष-कारण न मिले वहां सन्देह होता है कि जिस को बुलाते हैं वह सुने गा वा नहीं उसको दूर कहते हैं। उदाहरण—आगच्छ भो माणवक देवदत्त३ अत्र। यहां दूर ग्रहण इस लिये है कि। आगच्छ भो माणवक देवदत्त। यहां प्लुत न हुआ ॥ २९ ॥

१०२ हैहेप्रयोगे हैहयोः ॥ ३० । ८ । २ । ८५ ॥

है हे शब्दों का प्रयोग होतो दूर से बुलाने में जो वाक्य उस में हैहे शब्दों को प्लुतोदात्त हो। उ० है३ देवदत्त। देवदत्तहै ३। हे ३ देवद-त्त। देवदत्त हे ३। इस में द्विवारा है हे ग्रहण इस लिये हैं कि वाक्य के आदि अन्त में सर्वत्र है हे को प्लुतोदात्त हो जावे ॥ ३० ॥

१०३ गुरोरनृतोऽनन्त्यस्याप्येकैकस्य प्राचाम्॥३१॥८।२।८६॥

जो ऋकार को छोड़ के अनन्त्यगुरु वर्ण है उस एक २ को सम्बो-धन वाक्य में विकल्प कर के प्लुतोदात्त हो। दे३वदत्त। यहां (दे) गुरु है उस को प्लुतोदात्त होता है। देवद३त्त। यहां दकार को प्लुतोदात्त होता है। इसी प्रकार। य३ज्ञदत्त। इत्यादि। यहां गुरु ग्रहण इस लिये है कि वकार को प्लुत न हो। ऋकार का निषेध इस

लिये है कि । कृष्णादत्त ३ । यहां ऋकार को प्लुत न हुआ । प्राचां ग्रहण इस लिये है कि प्लुत उदात्त विकल्प कर के हो । आयुष्मानेधि देवदत्त । यहां एक पक्ष में नहीं होता । एकैकग्रहण इस लिये है कि एक वाक्य में एक साथ कई वर्णों को प्लुत न हो ॥ ३१ ॥

१०४ **ओमभ्यादाने** ॥ ३२ ॥ ८ । २ । ८७ ॥

अभ्यादान अर्थात् आरम्भ अर्थ में जहां ओम् का प्रयोग किया जाता है वहां प्लुतोदात्त होता है । जैसे । ओ३म् इषेत्वोर्जेत्वा । ओ३म् अग्निमीळेपुरोहितम् । इत्यादि ॥ ३२ ॥

१०५ **ये यज्ञकर्मणि** ॥ ३३ । ८ । २ । ८८ ॥

यज्ञकर्म अर्थ में ये इस पद को प्लुतोदात्त हो । ये ३ यजामहे । यज्ञकर्म इस लिये कहा है कि । ये यजामहे । ऐसा पाठ करने मात्र में प्लुत न हो किन्तु विधियज्ञ में जब मन्त्र का प्रयोग हो वहीं प्लुत होवे और यजामहे के साथ ही ये शब्द को प्लु- को प्लुतोदात्त हो । गां देवासः) इत्यादि में प्लुत अभीष्ट नहीं ॥ ३३ ॥

१०६ **प्रणवष्टेः** ॥ ३४ । ८ । २ । ८९ ।४५॥८॥२॥१००॥

यज्ञकर्म में टि के स्थान में प्रणव आदेश ेनुदात्तप्लुत हो । प्रश्ना- वा आधी ऋचा के अंत्य टिसञ्ज्ञक (१३६ ,३इ इति । पटा३उ इति । ओंकार ही प्रणव कहाता है । उ०—अपां रे से आदि मध्य में प्लुत हुआ है ।

१०७ **याज्यान**: खलु्वासि मार्गा१क ३ अत्र । इत्यादि ॥ ४५ ॥

११८ **—चादिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने** ॥ ४६ ।८ ।२।१०१।

उपमार्थवाची चित् अव्यय के प्रयोग में जो वाक्य उस की टि को प्लुतानुदात्त हो । उ०—अग्निचिद्भायात्३त् । राजचिद्भायात्३त् । अग्नि

समुदाय रूप हैं उन प्रत्येक वाक्य के अन्त्य टिभाग को प्लुत न हो किन्तु मन्त्रान्त में ही हो ॥ ३५ ॥

१०८ ब्रूहिप्रेष्यश्रौषड्वौषडावहानामादेः ॥ ३६।८।२।९१ ॥

ब्रूहि, प्रेष्य, श्रौषट्, वौषट् और आवह इन के आदि अक्षर को उदात्त प्लुत हो। उ०—अग्नयेऽनुब्रू३हि। अग्नये गोमयान् प्रे३ष्य। अस्तु श्रौ३षट्। सोमस्याग्ने वीही३ वौ३षट्। अग्निमा३वह ॥ ३६ ॥

१०९ अग्नीत्प्रेषणे परस्य च ॥ ३७ । ८ । २ । ९२ ॥

अग्नीधृक्‌र्त्विग्विशेष को प्रेरणा करने में आदि और उस से पर को भी प्लुतोदात्त हो। उ०—ओ३म्श्रा३वय। इत्यादि ॥ ३७ ॥

११० विभाषा पृष्टप्रतिवचने हेः ॥ ३८ । ८ । २ । ९४ ॥

पूछे हुए के उतर देने में हि को प्लुतोदात्त हो विकल्प कर के। उ० अकार्षीः कटं देवदत ?। अकार्षं हि३। अकार्षंहि। इत्यादि। पृष्ट ग्रहण इस लिये है कि कटङ्करिष्यतिहि। यहां न हो ॥३८॥

शब्दों को प्लुतोदात्त हो।

गे च ॥ ३९ । ८ । २ । ९४ ॥

त। देवदत्त है ३। इस में

के आदि अन्त में सर्वत्र ां से उस के पक्ष से दूसरा के अपने पक्ष में पीछे वाक्य उसके टिभाग को प्लुतोदात्त विकल्प से हो

१०३ गुरोरनृतोऽनन्त्य ने यह प्रतिज्ञा की उस को युक्ति से दूसरा के अनित्यः शब्द इत्यात्थ३। अनित्यः शब्द

जो ऋकार को छोड़ के इत्यादि ॥ ३९ ॥

धन वाक्य में विकल्प कर के प्लुतोदात्त हो। दे३वदत्त

गुरु है उस को प्लुतोदात्त होता है। देवद३त्त। यहां ... को ॥ ३५ ॥

प्लुतोदात्त होता है। इसी प्रकार। य३ज्ञदत्त। इत्यादि। यहां गुरु ग्रहण इस लिये है कि वकार को प्लुत न हो। ऋकार का निषेध इस

११३ अङ्गयुक्तं तिङाकाङ्क्षम् ॥ ४१ । ८ । २ । ९६ ॥

अङ्ग शब्द से युक्त सापेक्ष जो तिङन्त है उस के टि को धमकाने अर्थ में प्लुतोदात्त हो। उ०—अङ्ग कूज३। अङ्ग व्याहर३ इदानीं ज्ञास्यसि जाल्म!। इत्यादि॥ तिङ् इस लिये कहा कि। अङ्ग देवदत्त। यहां न हो ॥४१॥

११४ विचार्य्यमाणानाम् ॥ ४२ ॥ ८ । २ । ९७ ॥

जो विचार्य्यमाण वाक्य हैं उन की टि को प्लुतोदात्त हो। जैसे-होतव्यं दीक्षितस्य गृहा ३ इ इति। यहां दीक्षित के घर में हवन करना चाहिये यह विचार करते हैं॥ ४२॥

११५ पूर्वन्तु भाषायाम् ॥ ४३ । ८ । २ । ९८ ॥

लौकिक प्रयोग में विचार्यमाण वाक्यों के पूर्व प्रयोग में प्लुतोदात्त हो। अहिर्नु ३। रज्जुर्नु। यह सांप है वा रज्जु?॥ ४३॥

११६ प्रतिश्रवणे च ॥ ४४ । ८ । २ । ९९ ॥

स्वीकार अर्थ में जो वाक्य उस के टि को प्लुतोदात्त हो। गां देहि भोः। अहं ते ददामि ३॥ ४४॥

११७ अनुदात्तं प्रश्नान्ताभिपूजितयोः ॥४५॥८॥२॥१००॥

प्रश्न के अन्त में और अभिपूजित अर्थ में अनुदात्तप्लुत हो। प्रश्नान्त। अगम ३ः पूर्वा३न् ग्रामा३न्। अग्निभूता३इ इति। पटा३उ इति। यहां। अगमः३ पूर्वा३न् ग्रामा३न् (१२२) से आदि मध्य में प्लुत हुआ है। अभिपूजित। शोभनः खल्वसि माणवक ३ अत्र। इत्यादि॥ ४५॥

११८ चिदिति चोपमार्थे प्रयुज्यमाने ॥ ४६ ।८।२।१०१।

उपमार्थवाची चित् अव्यय के प्रयोग में जो वाक्य उस की टि को प्लुतानुदात्त हो। उ०—अग्निचिद्भाया३त्। राजचिद्भाया३त्। अग्नि

के तुल्य वा राजा के तुल्य तेजस्वी होवे । उपमार्थे इस लिये कहा कि कथञ्चिदाहुः । यहां प्लुत न हो प्रयुज्यमान इस लिये है कि । अग्नि-माणवको भायात् । यहां न हो ॥ ४६ ॥

११९ उपरिस्विदासीदिति च ॥ ४७ ॥ ८ । २ । १०२ ।

उपरिस्विदासीत् इस वाक्य के टि को प्लुतानुदात्त हो । उपरि-स्विदासी३त् ॥ ४७ ॥

१२० स्वरितमाम्रेडितेऽसूयासम्मतिकोपकुत्सनेषु ॥ ४८ ॥ ८ । २ । १०३ ॥

जो आम्रेडित (द्विर्वचन का परभाग) परे हो तो असूया, सम्मति, कोप, कुत्सन, अर्थ में पूर्वभाग को स्वरितप्लुत हो। असूया । माणवक ३ माणवक । सम्मति । माणवक प्रियं वद ३ प्रियं वद शोभनः खल्वसि । कोप । दुर्जन ३ दुर्जन तूष्णीम्भव । कुत्सन । याष्टीक ३ याष्टीक रिक्ता ते यष्टिः । इत्यादि ॥ ४८ ॥

१२१ क्षियाशीःप्रैषेषु तिङाकाङ्क्षम् ॥ ४९ । ८ । २ । १०४ ॥

क्षिया—आचार विगाड़ना, आशीर्वाद और आज्ञा देने अर्थ में अन्य उत्तरपद को आकाङ्क्षा रखने वाला तिङन्त पद प्लुतस्वरित हो, स्वयं रथेन याति ३ उपाध्यायं पदातिं गमयति । सुतांश्च लप्सीष्ट ३ धनं च तात । कटं कुरु ३ ग्रामं च गच्छ । आकाङ्क्ष ग्रहण इस लिये है कि । दीर्घं ते आयुरस्तु । यहां प्लुत न होवे ॥ ४९ ॥

१२२ अनन्तस्यापि प्रश्नाख्यानयोः ॥ ५० ॥ ८ । २ । १०५ ॥

प्रश्न और आख्यान अर्थ में अन्त्य और अनन्त्य पद के भी टि भाग को प्लुतस्वरित होवे । अगमः ३ पूर्वा३न् ग्रामा३न् अग्निभूता ३ इ । पटा ३ उ । आख्यान में । अगमः ३ पूर्वा३न् ग्रामा३न् भोः ॥ ५

१२३ प्लुतावैच इदुतौ ॥ ५१ ॥ ८ । २ । १०६ ॥

(दूराद्धूते०) इत्यादि सूत्रों में जो प्लुत विधान किया है वहां एच् को जो प्लुत आवे तो उस के अवयव इकार उकार को प्लुत हो। ऐ३तिकायन: । औ३पगव: । यहां जब इवर्ण उवर्ण अवर्ण का समविभाग समझा जाता है तब इकार उकार द्विमात्र प्लुत हो जाते हैं ॥ ५१ ॥

१२४ एचोऽप्रगृह्यस्यादूराद्धूते पूर्वस्यार्द्ध-
स्याऽऽदुत्तरस्येदुतौ ॥ ५२ ॥ ८ । २ । १०७ ॥

जो समीप से बुलाने में अप्रगृह्य एच् है उस के पूर्व अर्द्धभाग अवर्ण को आकारादेश हो। और उत्तरभाग को इकार उकार आदेश हों॥५२॥

१२५—वा० प्रश्नान्ताभिपूजितविचार्य्यमाणप्रत्यभिवादयाज्यान्ते-
ष्विति वक्तव्यम् ॥ ५३ ॥

जो इस सूत्र में कार्य विधान है वह प्रश्नान्त, अभिपूजित, विचार्यमाण, प्रत्यभिवाद और याज्यान्त विषय में समझना चाहिये। प्रश्नान्त-अगम:३ पूर्वां३न् ग्रामा३न् अग्निभूता३इ। पटा३उ। अभिपूजित—सिद्धोऽसि माणवक३ अग्निभूता३इ । पटा३उ। विचार्यमाण—होतव्यं दीक्षितस्य गृहा३इ । प्रत्यभिवाद—आयुष्मानेधि अग्निभूता३इ । याज्यान्त—उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नया३इ । इत्यादि पूर्वोक्त विषयों में परिगणन इस लिये किया है कि। विष्णुभूते३ विष्णु भूते घातयिष्यामि त्वा। यहां न हुआ ॥ ५३ ॥

१२६ वा०—एच: प्लुतविकारे पदान्तग्रहणम् ॥ ५४ ॥

जहां एच् को पूर्व सूत्र से आदेश करते हो वहां पदान्त समझना चाहिये। अर्थात् यहां नहीं होता। भद्रं करोषि गौ: । यहां अन्त विसर्जनीय आते हैं। यहां अप्रगृह्य ग्रहण इस लिये है कि। शोभने खलु माले३ ॥ ५४ ॥

१२७—वा० आमन्त्रिते छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ ५५ ॥

आमन्त्रित परे हो तो पूर्व को प्लुत हो वेद विषय में जैसे अग्ना३ इ पत्नीवः ॥ ५५ ॥

१२८ तयोर्य्वावचि संहितायाम् ॥ ५६ । ८ । २ । १०८ ॥

पूर्वोक्त इकार उकार को य् व् आदेश क्रम से होते हैं । अग्ना३ यिन्द्रम् । पटा३वुदक्रम् ॥ ५६ ॥

(इति प्लुतसंज्ञाप्रकरणम्)

१२९ ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम् ॥ ५७ । १ । १ । २६ ॥

ई, ऊ, ए ये जिन के अन्त में हों ऐसे जो द्विवचनान्त शब्द वे प्रगृह्यसंज्ञक हों जैसे । अग्नीइमौ । वायूइमौ । मालेइमे इत्यादि ॥५७॥

१३० अदसो मात् ॥ ५८ । १ । १ । २७ ॥

अदस् शब्द के मकार से परे ई ऊ, की प्रगृह्यसंज्ञा हो । जैसे अमी एते । अमूइति ॥ ५८ ॥

१३१ शे ॥ ५९ ॥ १ । १ । २८ ॥

जो विभक्ति के स्थान में शे आदेश होता है उस की प्रगृह्यसंज्ञा हो । जैसे अस्मेइन्द्राबृहस्पती ॥ ५९ ॥

१३२ निपातएकाजनाङ् ॥ ६० । १ । १ । २९ ॥

आङ् को छोड़ के जो केवल एक ही अच् निपात है वह प्रगृह्यसंज्ञक हो। जैसे अ, इ, उ,। अअपक्राम । इइन्द्रं पश्य। उउत्तिष्ठ॥६०॥

१३३ ओत् ॥ ६१ । १ । १ । ३० ॥

जो ओकारान्त निपात है वह प्रगृह्यसंज्ञक हो । जैसे। अथो इति अहो इमे । भो इह । इत्यादि ॥ ६१ ॥

१३४ सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे ॥ ६२ । १ । १ । ३१ ॥

जो अनार्ष अर्थात् लौकिक इति शब्द के परे संबुद्धि निमित्त ओकार है उस को शाकल्य ऋषि के मत में प्रगृह्यसंज्ञा हो। जैसे वायो इति। अन्य ऋषियों के मत में वायविति। यहां अनार्ष ग्रहण इस लिये है कि आर्ष अर्थात् वैदिक इति शब्द के परे प्रगृह्यसंज्ञा न हो जैसे बन्धवित्यब्रवीत् इत्यादि ॥ ६२ ॥

१३५ उञ ऊँ ॥ ६३ । १ । १ । ३२ ॥

शाकल्य आचार्य के मत में अनार्ष इति शब्द परे हो तो उञ् की प्रगृह्यसंज्ञा और उञ् के स्थान में ऊँ ऐसा आदेश हो उस को भी प्रगृह्य संज्ञा हो। जैसे। उइति। ऊँ इति विति ॥ ६३ ॥

१३६ ईदूतौ च सप्तम्यर्थे ॥ ६४ ॥ १ । १ । १९ ॥

सप्तमी विभक्ति के अर्थ में वर्त्तमान ईकारान्त ऊकारान्त शब्द प्रगृह्यसंज्ञक हों। उ० मामकी इति। तनूइति। सोमो गौरी अधिश्रितः ॥ ६४ ॥

१३७ नवेति विभाषा ॥ ६५ ॥ १ । १ । ४४ ॥

निषेध और विकल्प के अर्थ की विभाषा संज्ञा हो ॥ ६५ ॥

१३८ अदर्शनं लोपः ॥ ६६ । १ । १ । ६ ॥

विद्यमान के अदर्शन को लोप संज्ञा हो ॥ ६६ ॥

१३९ अचोऽन्त्यादि टि ॥ ६७ । १ । १ । ७१ ॥

जो अचों के बीच में अन्त्य अच् है उस से ले के जो अन्त्यादि समुदाय सो टि संज्ञक होता है जैसे। अग्निचित्। यहां अन्त्य के इत् भाग की टि संज्ञा है ॥ ६७ ॥

१४० अलोऽन्त्यात्पूर्व उपधा ॥ ६८ । १ । १ । ८० ॥

जो वर्ण समुदाय पद में अन्त वर्ण से पूर्व वर्ण है उस की उपधा संज्ञा होती है। जैसे निर् दुर् यहां इ, उ की उपधा संज्ञा है ॥ ६८ ॥

१४१ ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ॥ ६९ ॥ १ । २ । ६९ ।

एक मात्रिक द्विमात्रिक और त्रिमात्रिक अच् क्रम से ह्रस्व दीर्घ प्लुत संज्ञक हो । अ । आ । आ ३ ॥ ६९ ॥

१४२ सुप्तिङन्तं पदम् ॥ ७० । १ । ३ । १४ ॥

सुबन्त और तिङन्त शब्दों की पदसंज्ञा हो ॥ ७० ॥

१४३ प्राग्रीश्वरान्निपाताः ॥ ७१ । १ । ४ । ५६ ॥

यह अधिकार सूत्र है इस से आगे जो कहेंगे उन की निपात संज्ञा होगी ॥ ७१ ॥

१४४ चादयोऽसत्त्वे ॥ ७२ । १ । ४ । ५७ ॥

जहां किसी निज द्रव्य के वाचक नहीं वहां च आदि शब्द निपात संज्ञक हों । च । वा । ह । इत्यादि की निपात संज्ञा है ॥ ७२ ॥

१४५ प्रादय उपसर्गाः क्रियायोगे ॥ ७३ । १ । ४ । ५८ ॥

प्रादि असत्त्व अर्थ में निपात संज्ञक और क्रियायोग में उपसर्ग संज्ञक हों ॥ ७३ ॥

१४६ गतिश्च ॥ ७४ ॥ १ । ४ । ५९ ॥

क्रियायोग में प्रादि गतिसंज्ञक भी हों ॥ ७४ ॥

१४७ परः सन्निकर्षः संहिता ॥ ७५ । १ । ४ । १०९ ॥

पर—नाम अतिशयकर जो सन्निकर्ष—वर्णों की समीपता है उस की संहिता संज्ञा हो ॥ ७५ ॥

१४८ विरामोऽवसानम् ॥ ७६ ॥ १ । ४ । ११० ॥

समाप्ति अर्थात् जिस के आगे कोई वर्ण न हो उस अन्तिम वर्ण की अवसान संज्ञा होवे ॥ ७६ ॥

इति संज्ञाप्रकरणं समाप्तम् ॥

३ आदेः परस्य ॥ ञ्ज्ञा है जैसे—कर्ता । यहां ा योग होवे । जैसे

जो पर अर्थात् उत्तर (१५६) से रपर हो गया है । चे अनियतयोगा

समझना चाहिये यह ऋकार और । स्तोता । यहां उकार हो) इकः यह

पढ़ने ज़न—कारकः । यहां ऋ के स्थान में आ का लाभ इसी

। यहां) ई) और इ) के स्थान में) का नियम कर दिया

है वह । यहां ऊ) और ऋ) के स्थान में औ) वृ न शब्द की उपस्थिति

सर्वत्र प्रवृत्त होती है क्योंकि (अपदन्न प्रोष्ठस्थानी गम धातु की उपधा को

तिङ् प्रत्यय से रहित शब्द का प्रयोग कभी न क न होवे । और गुण वृ

तिङ् भी समर्थ ही से विधान होते हैं असमर्थ १ कहें वहीं इक् के स्थान

संज्ञा के सामर्थ्य नहीं होता सामर्थ्य के विना उपदेश कहा है. से संज्ञा

नहीं हो सकती और इस के विना प्रयोग भी नहीं बन सकता क्योंकि ।

न केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या न च केवलः प्रत्ययः । प्रकृतिप्रत्ययौ प्रत्ययार्थं सह ब्रूतः।

इस महाभाष्य के वचन का अभिप्राय यही है कि दोनों के मिले विना कोई भी प्रयोग सिद्ध नहीं हो सकता इस कारण सामर्थ्य से विना किसी प्रत्यय कार्य्य वा कोई व्याकरण की बात पृथक् नहीं हो सकती इस लिये इसी सूत्र के भाष्य में ।

परिभाषायां च सत्यां यावान् व्याकरणे पदगन्धो नाम स सर्वः संगृहीतो भवति।

यह परिभाषा सूत्र है इस लिये जो कुछ व्याकरण का विषय है उस सब में इस सूत्र की प्रवृत्ति अवश्य होती है क्योंकि जैसे विना धातुसंज्ञा के भ्वादि शब्द कृत्संज्ञक प्रत्ययों की उत्पत्ति में समर्थ नहीं होते । और कृत्संज्ञक प्रत्यय भी धातु से परे नहीं हो सकते । वैसे विना प्रातिपदिक संज्ञा के टाप् आदि स्त्री और अण् आदि तद्धित प्रत्यय उत्पन्न ही नहीं हो सकते क्योंकि विना प्रातिपदिक संज्ञा के उन का सामर्थ्य ही नहीं है जो सुप् आदि प्रत्ययों की उत्पत्ति करा सकें और सुप् स्त्री

१४१ ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ॥ ६९ ॥ १ । २ । ६१ ।

एक मात्रिक द्विमात्रिक और त्रिमात्रिक अच् क्रम से ह्रस्व दीर्घ प्लुत संज्ञक हो । अ । आ । आ ३ ॥ ६६ ॥

१४२ सुप्तिङन्तं पदम् ॥ ७० । १ । ३ । १४ ॥

सुबन्त और तिङन्त शब्दों की पदसंज्ञा हो ॥ ७० ॥ भक्ति

१४३ प्राग्रीश्वरान्निपाताः ॥ ७१ ५५ । ४ । ५६ ॥ सामर्थ्य

यह अधिकार सूत्र है आ एकपद अनेक स्वरों का एकस्वर औ

संज्ञा होगी ॥ ७१ ॥ विभक्ति हो जाती है। और जो व्यपेक्षा

१४४ चादयोऽस के आगे उत्तरपद विधि शब्द का लोप भी किया

१ जहां किसी नि होता है कि व्याकरण आदि सब शास्त्र और लोक व्यवहार में भी समर्थ के लिये सब विधान है असमर्थ के लिये कुछ भी नहीं जैसे आंख वाला देखने में समर्थ होता है इस लिये उस को देखने का उपदेश भी करते हैं कि इस को तू देख अन्धे को कोई नहीं कह सकता क्योंकि वह देखने में समर्थ नहीं है। वैसे ही कोई सामर्थ्य वाले के लिये जो कुछ विधान करता है वह शुद्ध और सफल और जो कोई इस से उलटा करता है वह अशुद्ध और निष्फल समझा जाता है इस लिये यह सूत्र जितने व्याकरण आदि शास्त्रों के विषय हैं उन सब में लगता है इस से यह भी समझना कि जो भट्टोजिदीक्षित ने कौमुदी में इस सूत्र को समास ही में प्रवृत्त किया है सो अशुद्ध ही है ॥७७॥

१५० इको गुणवृद्धी ॥ ७८ ॥ १ । १ । ३८ ॥

जहां २ गुण और वृद्धि शब्द करके गुण और वृद्धि का विधान करें वहां २ इक् ही के स्थान में गुण और वृद्धि होते हैं। ऐसा सर्वत्र व्याकरण शास्त्र में समझलेना यहां, अ, ए, और ओ, को गुण संज्ञा

३ आदेः परस्य ॥ ऊा है जैसे—कर्त्ता । यहां ा योग होवे । जैसे
जो पर अर्थात् उत्तार (१५६) से रपर हो गया है । च अनियतयोगा
समझना चाहिये यह कार और । स्तोता । यहां उकार ड्डी) इकः यह
पढ़ने का प्रयोजन—कारकः । यहां ऋ के स्थान में आ का लाभ इसी
पढ़ने से फिर । यहां ई और इ के स्थान में का नियम कर दिया
आस धा । यहां ऊ और उ के स्थान में औ वृ च शब्द की उपस्थिति
प्राप्त इस लिये है कि--अन्तगः । यहां ओष्ठस्थानी गम धातु की उपधा को
व्यंजन के स्थान में ओष्ठस्थानी ओकार गुण न होवे । और गुण वृद्धि
ग्रहण लिये हैं कि जहां संज्ञा शब्दों से गुण वृद्धि कहें वहां इक् के स्थान
में हों । और द्यौः यहां दिव् शब्द को औकारादेश कहा है सो संज्ञा
पूर्वक विधि के न होने से वकार के स्थान में होता है (सः) यहां दकार
के स्थान में अकारादेश होता है पूर्ववत् ॥ ७८ ॥

१५१ आद्यन्तवदेकस्मिन् ॥ ७९ ॥ १ । १ । ३५ ॥

जैसे आदि और अन्त में कार्य्य होते हैं वैसे एक में भी हों अर्थात् अनेकाश्रित कार्य भी एक को हो जावे । जिस से पूर्व कोई न हो और परे हो उस को आदि और जिस से परे कोई न हो पूर्व हो उस को अन्त कहते हैं इस कारण आदि अन्त को कहे हुए कार्य्य एक में नहीं बन सकते इस लिये यह परिभाषा है । जैसे (आर्द्धधातुकस्येड्वलादेः) अङ्ग से परे वलादि आर्द्धधातुक को इट् का आगम होता है सो । करिष्यति । हरिष्यति । यहां तो स्य प्रत्यय वलादि के होने से हो जाता है और । जोषिषत् । मन्दिषत् यहां केवल एकाक्षर (सिप्—का स्) वल् प्रत्यय होने से नहीं प्राप्त होता था । इस परिभाषा सूत्र से यहां भी हो गया । अन्तवत् जैसे—घटाभ्याम् । पटाभ्याम् । यहां अदन्त अंग को

१४१ ऊ...

एक प... आभ्याम् । यहां केवल ऋकार के होने से दीर्घ नहीं

प्लुत संज्ञक... अन्तवत् मान के हो जाता है ॥ ७९ ॥

१४२ सुप्ति... आद्यन्तौ टकितौ ॥ ८० ॥ १ । १ । ६० ॥

सुबन्त और ति... ककार अनुबन्ध वाले आगम हों वे आदि अन्त में

१४३ प्राग्रीश्व... जावें । अर्थात् टित् आगम जिस को कहा हो

यह ... और कित् जिस को विधान किया हो उस के अन्त में

संज्ञा ... जैसे—टित् । पुरुषाणाम् । यहां नुट् आम् के आदि में । अभवत् । यहां अट् का आगम धातु के आदि में । भविता । यहां इट् का आगम प्रत्यय के आदि में हुआ है । कित् । सोमसुत् । जटिलोभीषयते । यहां तुक् और षुक् आगम भी धातु के अन्त में हुए हैं इत्यादि ॥ ८० ॥

१५३ मिदचोऽन्त्यात्परः ॥ ८१ ॥ १ । १ । ६१ ॥

जो मित् आगम वा प्रत्यय है वह अन्त्य अच् से परे होता है । जैसे । नुम् । निन्दति । नन्दति । श्नम् । रुणद्धि । मुम् । वाचंयमः । नुम् । कुलानि । यशांसि । इत्यादि ॥ ८१ ॥

१५४ एचइग्घ्रस्वादेशे ॥ ८२ ॥ १ । १ । ६२ ॥

जहां २ एच् के स्थान में ह्रस्व आदेश विधान करें वहां २ इक् ही ह्रस्व हो जावें । जैसे । गो । चित्रगुः । शबलगुः । यहां ओकार के स्थान में उकार । रै । अतिरि । यहां ऐकार के स्थान में इकार और । नौ । अधिनु । यहां औकार के स्थान में उकार आदेश होता है इत्यादि ॥ ८२ ॥

१५५ षष्ठी स्थानेयोगा ॥ ८३ ॥ १ । १ । ६३ ॥

जो २ इस व्याकरण शास्त्र में अनियतयोगा षष्ठी (अर्थात् जिस का नियम नहीं किया कि इस षष्ठी का योग इस में हो) है वह २

३ आदेः परस्य ॥ ८१ ॥ १ ।..न में उस का योग होवे । जैसे

ये दोनों षष्ठी हैं । सो अनियतयोगा

जो पर अर्थात् उत्तर को कार्...जाती हैं जैसे (इको गुणवृद्धी) इकः यह

समझना चाहिये यह सूत्र (... गुणवृद्धि होवें । स्थान शब्द का लाभ इसी

पढ़ने का प्रयोजन यह ... होता है । और जहां २ षष्ठी का नियम कर दिया

पढ़ने से फिर अल ... ी का योग यहां हो वहां २ स्थान शब्द की उपस्थिति

आस धातु से ... ाती जैसे । शास इदङ् हलोः । यहां शास धातु की उपधा को

प्राकार

...त् आदेश होता है इत्यादि ॥ ८३ ॥

१५६ स्थानेऽन्तरतमः ॥ ८४ ॥ १ । १ । ६४ ॥

जो २ आदेश जिस २ के स्थान में प्राप्त हो वह २ अन्तरतम अर्थात् सदृशतम हो । अन्तरतम उस को कहते हैं कि जो अत्यन्त सदृश हो जो किसी के स्थान में होता है वही आदेश कहाता है सो स्थान शब्द का लाभ तो पूर्व परिभाषा से हुआ परन्तु जो स्थान में प्राप्त आदेश है वह कैसा होना चाहिये सो नियम इस परिभाषा से करते हैं । सादृश्य चार प्रकार का होता है (तद्यथा) स्थानकृतम् । अर्थकृतम् । प्रमाणकृतम् । गुणकृतञ्चेति । स्थानकृत अन्तरतम उस को कहते हैं कि जो २ कण्ठ आदि स्थान आदेशी का हो वही आदेश का भी होना अवश्य है जैसे । दण्ड—अग्रम् । दण्डाग्रम् । यहां पूर्वपर कण्ठस्थानी दो अकारों के स्थान में दीर्घ एकादेश कहा है सो स्थानकृत आन्तर्य्य मान के कण्ठस्थान वाले दोनों अकारों के स्थान में कण्ठस्थान वाला दीर्घ आकार ही होता है भिन्न स्थान होने से ईकार ऊकार नहीं होते । अर्थकृत आन्तर्य्य उस को कहते हैं कि जहां जैसा एक दो और बहुत अर्थों का बोधक स्थानी हो वहां वैसा ही आदेश भी होना चाहिये

[illegible]न सदृश हो वा नहीं हो यहां केवल [illegible]कार के होने से दीर्घ नहीं
[illegible]हां (तस्) प्रत्यय दो अर्थों का [illegible]ता है ॥ ७[illegible] ॥
(ताम्) आदेश भी दो अर्थों का बोधक [illegible] १ । १ । ६० ॥

आदि के स्थान में भी समझना चाहिये। प्रमाण[illegible] हों [illegible] आदि अन्त में है कि जो एकमात्रिक स्थानी हो तो उस के स्थान [illegible] कहा हो हो आदेश भी होवे और द्विमात्रिक के स्थान में द्विम[illegible] के अन्त में होना अवश्य है इत्यादि जैसे । अमुष्मै । अमूभ्याम् । यहां एक[illegible] स्थानी है उस के स्थान में एक मात्रिक हो और द्विमात्रिक के स्थान [illegible] द्विमात्रिक आदेश होता है। गुणकृत आन्तर्य्य उस को कहते हैं कि जो अल्पप्राण स्थानी हो तो उस के स्थान में अल्पप्राण वाला आदेश और महाप्राण स्थानी हो तो महाप्राण वाला आदेश भी होवे जैसे । वाग्घसति। त्रिष्टुब्भसति। यहां हकार के स्थान में पूर्वसवर्ण आदेश की प्राप्ति में जैसा हकार नादवान् और महाप्राण गुण वाला है उस के स्थान में आदेश भी वैसा ही होना चाहिये सो ये दोनों गुण वर्गों के चतुर्थ वर्णों में हैं इस कारण गुणकृत आन्तर्य्य मान के घकार और भकार ही होते हैं । इत्यादि ॥ ८४ ॥

१५७—भा० स्थानइत्यनुवर्त्तमाने पुनः स्थानग्रहणं किमर्थम्॥८५॥

प्र०—पूर्व सूत्र से स्थान की अनुवृत्ति आ जाती फिर स्थान ग्रहण का प्रयोजन क्या है ? ॥ ८५ ॥

१५८ उ०—यत्रानेकविधमान्तर्य्यं तत्र स्थानत एवान्तर्य्यं बलीयो यथा स्यात् ॥ ८६ ॥

जहां अनेक प्रकार के अर्थात् स्थानकृत आदि दो तीन वा चारों आन्तर्य्य मिलते हों वहां स्थानकृत जो आन्तर्य्य है अत्यन्त बलवान् होने

[१६]३ आदेः परस्य ॥ ९१ ॥ १ । १ । ६८ ॥

जो पर अर्थात् उत्तर को कार्य्य कहें वह आदि अल् के स्थान में समझना चाहिये यह सूत्र (तस्मादित्युत्तरस्य) इस सूत्र का शेष है यहां पढ़ने का प्रयोजन यह है कि अल् की अनुवृत्ति इस में आजावे अन्यत्र पढ़ने से फिर अल् ग्रहण करना होता जैसे । (आसीनोऽधीते) यहां आस धातु से उत्तर आन को ईकारादेश कहा है सो उस के आदि अल् आकार के स्थान में हो जाता है । द्वीपम् । यहां द्वि शब्द से परे अप् [श]ब्द को ईकारादेश कहा है सो उस के आदि अल् अकार के स्थान में हो जाता है ॥ ६१ ॥

१६४ अनेकाल्शित् सर्वस्य ॥ ९२ ॥ १ । १ । ६९ ॥

जो अनेकाल् और शित् आदेश हो वह संपूर्ण के स्थान में हो जावे । अनेकाल् जिस में अनेक वर्ण हों शित् अर्थात् जिस का शकार इत् जाय) जैसे । अस्तेर्भूः । यहां अस् धातु के स्थान में भू आदेश अनेकाल् होने से सब के स्थान में हो जाता है । भविष्यति । भवितव्यम् । इत्यादि । शित् । इदम् इश् । विभक्ति के परे इदम् शब्द के स्थान में इश् आदेश होता है । शित् होने से सब के स्थान में हो जाता है । इतः । इह । आभ्याम् । इत्यादि ॥ ६२ ॥

१६५ स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ ॥ ९३ ॥ १ । १ । ७० ॥

जो आदेश है वही स्थानी के तुल्य होवे अर्थात् जो काम स्थानी से सिद्ध होता है वही आदेश से भी हो जावे परन्तु जो अलाश्रयविधि कर्त्तव्य हो तो आदेश स्थानिवत् न हो । स्थानी उस को कहते हैं कि जो प्रथम तो हो पीछे न रहै और आदेश उस को कहते हैं कि जो [प्रथम] न हो और पीछे हो जावे जो एक की तुल्य दूसरे को मान के

कोई काम करना है उस को अतिदेश कहते हैं। स्थानी और आदेश के पृथक् २ होने से स्थानी का कार्य आदेश से नहीं निकल सकता इस लिये आदेश को स्थानिवत् अतिदेश करते हैं। जैसे। राजा। यहां विभक्तिलोप होने पर भी पदसंज्ञा रहती है। इत्यादि। आबधिषीष्ट। यहां हन धातु के स्थान में बध आदेश हुआ है उस को हन धातु का कार्य्य आत्मनेपद स्थानिवत् मान के हो जाता है। पुरुषाय। यहां जो ङे विभक्ति के स्थान में य आदेश होता है उस को सुप् मान के दीर्घ और पदसंज्ञा आदि कार्य्य भी मानते हैं। इत्यादि। यहां वत् करण इस लिये है कि संज्ञाधिकार में यह परिभाषा सूत्र पढ़ा है सो आदेश की स्थानी संज्ञा न हो जावे। आदेश ग्रहण इस लिये है कि आदेशमात्र स्थानिवत् हो जावे अर्थात् जो। अवयव के स्थान में आदेश होते हैं वे भी स्थानिवत् हो जावें जैसे। भवतु। यहां इकार के स्थान में उकार हुआ है उस के स्थानिवत् होने से ही पदसंज्ञा आदि कार्य्य होते हैं। अनल्विधि ग्रहण इस लिये है कि अल्विधि में स्थानिवद्भाव न हो। अल्विधि शब्द में कई प्रकार का समास होता है अल् से परे जो विधि, अल् की जो विधि, अल् में जो विधि, और अल् करके जो विधि करना हो वहां स्थानिवद्भाव न हो। जैसे अल् से परे विधि। द्यौः। यहां दिव् शब्द के वकार को औकारादेश हुआ है उस हल् वकार से परे सु विभक्ति का लोप (हल्ङ्याब्भ्यो०) इस सूत्र से प्राप्त है सो नहीं होता क्योंकि यहां हल् से परे सु नहीं है। अल् की जो विधि। द्युकामः। यहां दिव् शब्द के वकार को उकारादेश हुआ है सो जो स्थानिवत् माना जाय तो उस वकार का लोप (लोपो व्योर्वलि) इस सूत्र से हो जावे। अल् में जो विधि। क इष्टः। यहां यकार के स्थान में इकार संप्रसारण हुआ

है सो जो स्थानिवत् माना जाय तो (हशि च) इस सूत्र से उत्व, प्राप्त है सो नहीं होता । अल् करके जो विधि वहां स्थानिवत् न हो जैसे । व्यूढोरस्केन । महोरस्केन । यहां विसर्जनीय के स्थान में सकारादेश हुआ है उसको यदि स्थानिवत् मानें तो विसर्जनीय जो अयोगवाहों में प्रसिद्ध है उस का अट् प्रत्याहार में पाठ मान के नकार को णकारादेश प्राप्त है सो नहीं होता इत्यादि इस सूत्र का महान् विषय है विशेष महाभाष्य में देख लेना ॥ ६३ ॥

१६६ अचः परस्मिन् पूर्वविधौ ॥ १४ । १ । १ । ७२ ॥

जिस अच् के स्थान में आदेश होने वाला हो उस के परे पूर्व को विधि करना हो तो अच् के स्थान में जो आदेश है वह स्थानिवत् हो जावे जिस लिये पूर्व सूत्र से अल्विधि में स्थानिवद्भाव का निषेध किया और उसी विषय में इस सूत्र से स्थानिवद्भाव का विधान है इस लिये यह सूत्र उस का अपवाद है जैसे । पटयति । यहां पटु शब्द से णिच् प्रत्यय के परे उस के उकार का लोप हुआ है उस उकार को इस सूत्र से स्थानिवत् मानने से वृद्धि नहीं होती । यहां अच् ग्रहण इसलिये है कि हल् के स्थान में जो आदेश है वह स्थानिवत् न हो । जैसे । आगत्य । जो यहां मकार का लोप हुआ है उस को स्थानिवत् मानें तो तुक् का आगम नहीं पावे । परस्मिन् ग्रहण इस लिये है कि जहां परनिमित्त अच् का आदेश न हो वहां स्थानिवद्भाव न हो जैसे । आदीध्ये । यहां जो इट् प्रत्यय को एकारादेश होता है वह परनिमित्त नहीं है उस को यदि स्थानिवत् मानें तो दीधी धातु के ईकार का लोप (यीवर्णयोर्दीधीवेव्योः) से हो जावे सो नहीं होता । पूर्वविधि ग्रहण इस लिये है कि जहां परविधि कर्त्तव्य हो वहां स्थानिवद्भाव न हो ।

जैसे—नैधेयः । यह जब डुधाञ् धातु के आकार का लोप कित् प्रत्यय के परे होता है तब निधि शब्द बनता है उस आकार को यदि स्थानिवत् मानें तो द्व्यच् प्रातिपदिकाश्रित जो ढक् प्रत्यय होता है वह नहीं हो सके परविधि वही है कि प्रातिपदिक से परे प्रत्यय होते हैं ॥ ९४ ॥

१६७ न पदान्तद्विर्वचनवरेयलोपस्वरसवर्णानुस्वारदीर्घजश्चर्विधिषु ॥ ९५ । १ । १ । ७३ ॥

पदान्त, द्विर्वचन, वरे, यलोप, स्वर, सवर्ण, अनुस्वार, दीर्घ, जश्, चर्, इन विधियों के करने में जो पर को निमित्त मान के आदेश होता है वह स्थानिवत् न होवे जो पूर्व सूत्र से स्थानिवद्भाव का विधान किया है उसी का नियत स्थानों में यह सूत्र निषेध करता है जैसे पदान्तविधि । कौस्तः । यहां अस् धातु के अकार का लोप पर को मान के हुआ है उस को स्थानिवत् मान के जो आब् आदेश प्राप्त है सो नहीं होता । द्विर्वचनविधि। दद्ध्यत्र । यहां इकार को यणादेश पर को मान के हुआ है उस के स्थानिवत् होने से धकार को द्विर्वचन नहीं पाता इस लिये द्विर्वचनविधि में स्थानिवद्भाव का निषेध किया है । वरेविधि अर्थात् जो वरच् प्रत्यय के परे लोप होता है वहां स्थानिवद्भाव न होवे जैसे । यायावरः । जो यहां अकार का लोप परनिमित्त हुआ है उस के स्थानिवत् होने से आकार का लोप प्राप्त है सो न हुआ । यलोपविधि । ब्राह्मणकण्डूतिः । यहां यक् प्रत्यय के अकार का लोप पर को मान के हुआ है उस के स्थानिवत् होने से यकार का लोप नहीं पाता था । स्वरविधि । चिकीर्षकः । यहां ण्वुल् प्रत्यय के परे चिकीर्ष धातु के अकार का लोप होता है उस के स्थानिवत् मानने से लित् प्रत्यय से पूर्व (की) में उदात्त स्वर इष्ट है सो नहीं हो सकता सो हो गया ।

सवर्णविधि । रुन्धः । यहां श्नम् प्रत्यय के अकार का लोप हुआ है उस के स्थानिवत् होने से धकार के परे अनुस्वार को परसवर्ण अर्थात् नकारादेश नहीं पाता था सो हुआ । अनुस्वारविधि । शिंषन्ति । यहा श्नम् प्रत्यय के अकार का लोप हुआ है उस के स्थानिवत् होने से नकार को अनुस्वार नहीं प्राप्त होता था सो हो गया । दीर्घविधि । प्रतिदीवृना । यहां प्रतिदिवन् शब्द के अकार का लोप हुआ है उस के स्थानिवत् होने से दीर्घ नहीं पाता था सो हो गया । जश् विधि । सग्धिः । यहां घस् धातु के अकार का लोप हुआ है उस के स्थानिवत् होने से क्तिन् प्रत्यय के तकार को धकार नहीं पाता था सो हो गया । चर्विधि । जक्षतुः । यहां भी घस् धातु के अकार का लोप हुआ है उस के स्थानिवत् होने से घकार को ककारादेश नहीं प्राप्त होता था सो होगया ॥ ६५॥

१९८ वा०—प्रतिषेधे स्वरदीर्घयलोपविधिषु लोपाजादेशो न स्थानिवत् ॥ ६६ ॥

जो सूत्र से पदान्तआदि विधियों में निषेध किया है वह इस प्रकार से होना चाहिये कि । स्वर । दीर्घ । और यलोपविधि के करने में जो लोपरूप अच् के स्थान में आदेश है वही स्थानिवत् न हो अन्य आदेश तो स्थानिवत् हो ही जावे जैसे । स्वरविधि । पंचारत्न्यः । यहां इकार के स्थान में यणादेश हुआ है उस के स्थानिवत् होने से (इगन्तकालकपाल०) इस सूत्र से पूर्वपदप्रकृतिस्वर हो जाता है । दीर्घविधि । क्रियोः । यहां किरिशब्द के इकार के स्थान में यणादेश हो गया है उस के स्थानिवत् होने से दीर्घ नहीं होता । यलोपविधि । वाय्वोः । यहां उकार के स्थान में वकार हुआ है उस के स्थानिवत् होने से यकार का लोप नहीं होता ॥ ६६ ॥

१६९ वा०—क्विलुगुपधात्वचङ्परनिर्ह्रासकुत्वेषूपसंख्यानम् ॥ ६७॥

यह दूसरा वार्त्तिक सूत्र के विषय से अलग स्थानिवद्भाव का निषेध करता है । क्वौ लुप्ते न स्थानिवत् । जहां क्विप् प्रत्यय के परे किसी का लोप हुआ हो वहां स्थानिवत्भाव न हो । लौः । यहां क्विप् प्रत्यय के परे णिच् प्रत्यय का लोप हुआ है उस के स्थानिवत् नहीं होने से वकार को ऊठ् आदेश होता है । लुकि न स्थानिवत् । लुक् होने में स्थानिवद्भाव न हो । पञ्चपटुः । यहां तद्धित प्रत्यय का लुक् होने से ङीष् प्रत्यय के ईकार का लुक् हुआ है । उस के स्थानिवत् नहीं होने से पटुशब्द को यणादेश नहीं होता । उपधात्वे न स्थानिवत् । उपधा का कार्य्य करने में स्थानिवत्भाव न हो । पारिखीयः । यहां परिखा शब्द से चातुरर्थिक अण् प्रत्यय के परे आकार के स्थानिवत् नहीं होने से परिखा शब्द से खोपध छ प्रत्यय हो जाता है । चङ्परनिर्ह्रासे न स्थानिवत् । जहां चङ् प्रत्यय के परे किसी का लोप हो वहां स्थानिवत् मान के कोई कार्य्य न किया जावे । जैसे । अवीवदत् । यहां णिच् के परे णिच् का लोप हुआ है उस के स्थानिवत् नहीं होने से उपधा को ह्रस्व हो जाता है । कुत्वे न स्थानिवत् । कुत्वविधि करने में स्थानिवद्भाव न हो जैसे । अर्कः । यहां अर्च धातु से घञ् प्रत्यय के परे णिच् प्रत्यय का लोप हुआ है उस के स्थानिवत् नहीं होने से चकार को ककारादेश हो जाता है ॥ ६७ ॥

१७० वा०—पूर्वत्राऽसिद्धे च ॥ ६८ ॥

इस तीसरे वार्त्तिक से अष्टाऽध्यायी के अन्त्य के तीन पादों के कार्य करने में स्थानिवत्भाव न हो । जैसे । यायष्टिः । यहां यङ् प्रत्यय के अकार का लोप हुआ है उस के स्थानिवत् होने से यज् धातु के जकार को षकारादेश नहीं प्राप्त होता या इत्यादि ॥ ६८ ॥

१७१ द्विर्वचनेऽचि ॥ ९९ । १ । १ । ७४ ॥

द्विर्वचन निमित्त अजादि प्रत्यय परे हो तो द्विर्वचन करने के लिये अच् के स्थान में जो आदेश है वह स्थानीरूप ही हो जावे । इस सूत्र में स्थानिवद्भाव का विधान है अर्थात् निषेध की अनुवृत्ति नहीं आती इसी से यह भी अतिदेश हुआ अतिदेश दो प्रकार के होते हैं । एक कार्यातिदेश और दूसरा रूपातिदेश । कार्यातिदेश वह होता है कि जो आदेश को स्थानी के सदृश मान के स्थानी का काम आदेश से ले लेना । और रूपातिदेश उस को कहते हैं कि स्थानी अपने स्थान में स्वयं आजावे क्योंकि जहां स्थानी के समान आदेश को मानने से काम नहीं चलता वहां रूपातिदेश माना जाता है सो इस सूत्र में रूपातिदेश है जैसे । पपतुः । यहां अतुस् प्रत्यय से परे धातु के आकार का लोप हुआ है उस के स्थानिवत् होने से ही द्विर्वचन हो सकता है । यहां द्विर्वचन ग्रहण इस लिये है कि । गोदः । यहां आकार का लोप अजादि प्रत्यय के परे हुआ है परन्तु द्विर्वचन निमित्त प्रत्यय नहीं । इस से स्थानिवद्भाव नहीं होता और अच् ग्रहण इस लिये है कि । देध्मीयते । यहां अजादि प्रत्यय परे नहीं इस से स्थानिवत् नहीं होता ॥ ९९ ॥

१७२ प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् ॥ १०० । १ । १ । ७५ ॥

जहां प्रत्यय का लोप हो जावे वहां उस प्रत्यय को मान के कोई कार्य प्राप्त होवे तो हो जाय जैसे । अग्निचित् । यहां लोप के बलवान् होने से क्विप् प्रत्यय का लोप प्रथम ही हो जाता है पीछे उस को मान के तुक् का आगम होता है इस सूत्र में प्रत्यय ग्रहण इस लिये है कि जहां संपूर्ण प्रत्यय का लोप हो वहीं प्रत्यय निमित्त कार्य्य हो और जहां प्रत्यय के अवयव का लोप हो वहां न हो । जैसे । आघ्नीत । यहां

प्रत्यय के अवयव सकार का लोप हुआ है सो जो प्रत्यय लक्षण होवे तो हन् धातु की उपधा का लोप नहीं प्राप्त होवे। दूसरा प्रत्यय ग्रहण इस लिये है कि प्रत्यय के लोप में वर्णाश्रय कार्य प्राप्त होता हो सो न हो जैसे। रायः कुलम्। रैकुलम्। यहां प्रत्यय के लोप में एच् प्रत्याहार के आश्रय ऐकार को आय् आदेश प्राप्त है सो नहीं हुआ ॥१००॥

१७३ न लुमताङ्गस्य ॥ १०१ । १ । १ । ७८ ॥

जहां लुक्, श्लु और लुप् इन शब्दों से प्रत्यय का अदर्शन हुआ हो वहां उस प्रत्यय के परे जिस की अङ्ग संज्ञा हो उस को प्रत्ययलक्षण मान के कार्य न हो पूर्व सूत्र में जो प्रत्ययलक्षण कार्य सामान्य से कहा है उस का इस सूत्र से विशेष विषय में निषेध करते हैं। जैसे। गर्गाः। यहां यञ् प्रत्यय को मान के वृद्धि और आद्युदात्त स्वर प्राप्त हैं सो नहीं होते। इस सूत्र में लुमता ग्रहण इस लिये है कि धार्यते। यहां णिच् प्रत्यय का लोप हुआ है इस से प्रत्यय निमित्त कार्य जो वृद्धि है उस का निषेध नहीं होता ॥ १०१ ॥

१७४ तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य ॥ १०२ । १ । १ । ८१ ॥

जो शब्द सप्तमी विभक्ति से निर्दिष्ट (पढ़ा) हो उस से जो पूर्व शब्द वा वर्ण हो उसी को कार्य हो अर्थात् उस से परे और व्यवधान वाले को न होवे। इस सूत्र में इति शब्द अर्थ का बोध होने के लिये पढ़ा है अन्यथा (तस्मिन्) यही शब्द जहां पढ़ते वहीं पूर्व को कार्य होता। जैसे। दधि—अत्र। यहां अकार सप्तमी निर्दिष्ट है उस से पूर्व जो इकार है इसी को कार्य होता है। इस में निर्दिष्ट ग्रहण इस लिये है कि व्यवधान में यणादेश न हो जैसे। समिधः। यहां धकार के व्यवधान में यण् नहीं होता ॥ १०२ ॥

१७५–तस्मादित्युत्तरस्य ॥ १०३ । १ । १ । ८२ ॥

जो पंचमी विभक्ति से निर्देश किया कार्य है वह व्यवधान रहित पर के स्थान में हो पूर्व सूत्र से यहां निर्दिष्ट शब्द की अनुवृत्ति आती है इति शब्द यहां भी पूर्वोक्त प्रयोजन के लिये है । जैसे द्वीपम् । यहां द्वि शब्द से परे अप् शब्द को ईकारादेश होता है । इस सूत्र में निर्दिष्ट ग्रहण का प्रयोजन यह है कि अत्यन्त समीप वाले को कार्य हो । अन्तर्दधाना आपः । यहां अप् शब्द को ईकारादेश न होवे (आदेः परस्य) यह सूत्र लिख चुके हैं सो इसी का शेष है ॥ १०३ ॥

१७६–स्वं रूपं शब्दस्याशब्दसंज्ञा ॥ १०४ । १।१। ८३ ॥

व्याकरण शास्त्र में शब्द का जो रूप है उसी का ग्रहण होवे अर्थात् उस के पर्यायवाची और विशेषवाची का ग्रहण न हो जैसे लोक में यह परंपरा है कि शब्द के उच्चारण से अर्थ की प्रतीति होती है जैसे किसी ने किसी से कहा कि गौ लाओ । तो चार पग वाली व्यक्ति विशेष को ले आता है वैसे व्याकरण में शब्दों से कार्य कहे हैं अर्थों से उन का होना तो कदापि संभव नहीं जैसे अग्नि से कुछ कार्य कहा तो क्या अंगारों से वह काम हो सकता है ? । इस लिये अग्नि के पर्य्यायवाची जितने शब्द हैं उन सब से वह कार्य्य प्राप्त होता था इस दोष के निवारण के लिये इस सूत्र का आरम्भ किया है जैसे । गो शब्द को कोई कार्य विधान किया है वह उस के पर्यायवाची धेनु आदि शब्दों से और विशेषवाचो कृष्णा आदि शब्दों से न हो इस सूत्र में रूप ग्रहण इस लिये है कि शब्द का सम्बन्धी जो अर्थ है उस का ग्रहण न होवे ॥ १०४ ॥ जो इस सूत्र पर चार वार्तिक हैं सो लिखते हैं ॥

१७७ वा०—सित्तद्विशेषाणां वृक्षाद्यर्थम् ॥ १०५ ॥

सित् निर्देश करना चाहिये अर्थात् जिन २ शब्दों के विशेषवाची शब्दों का ग्रहण इष्ट है वहां २ एक सकार अधिक पढ़ के एक नवीन संकेत करना चाहिये जिस से वृक्ष आदि शब्दों के विशेषवाची शब्दों का बोध हो जावे जैसे (विभाषा वृक्षमृग०) इत्यादि एकवचन प्रकरण में सामान्यवाची वृक्ष आदि शब्दों के ग्रहण में विशेषवाची न्यग्रोध आदि का भी ग्रहण होता है जैसे । प्लक्षन्यग्रोधम् । प्लक्षन्यग्रोधाः । इत्यादि ॥ १०५ ॥

१७८ वा०—पित्पर्यायवचनस्य च स्वाद्यर्थम् ॥ १०६ ॥

जिन शब्दों के पर्यायवाची शब्दों और उन के विशेषवाची शब्दों का ग्रहण और अपने रूप का भी ग्रहण इष्ट है वहां २ पित्संकेत करना चाहिये ॥

जैसे । स्वे पुषः । स्वपोषं पुष्यति । यह अपने स्वरूप का ग्रहण है । रैपोषं पुष्यति । धनपोषं पुष्यति । यहां स्वशब्द के पर्यायवाची रै आदि हैं । अश्वपोषम् । गोपोषम् । यहां अश्व आदि शब्द उस के विशेषवाची हैं ॥१०६॥

१७९ वा०—जित्पर्यायवचनस्यैव राजाद्यर्थम् ॥ १०७ ॥

जिन राजादि शब्दों के पर्यायवाचियों का ही ग्रहण इष्ट है वहां २ जित्संकेत करना चाहिये । इस वार्त्तिक से (सभा राजामनुष्यपूर्वा) इस सूत्र में राजन् शब्द के पर्यायवाचियों का ही ग्रहण होता है । इनसभम् । ईश्वरसभम् । ये राजन् शब्द के पर्यायवाची हैं । और राजन् शब्द का ही ग्रहण नहीं होता । राजसभा । और राजन् शब्द के विशेषवाचियों का भी ग्रहण नहीं होता । जैसे । चन्द्रगुप्त सभा । पुष्पमित्र सभा । इत्यादि ॥ १०७ ॥

१८० वा०—झित्तस्य च तद्विशेषाणां च मत्स्याद्यर्थम् ॥१०८॥

जिन मत्स्यादि शब्दों के विशेषवाचियों और उन के स्वरूप का ग्रहण इष्ट है वहां झित्संकेत करना चाहिये इस वार्तिक से (पक्षिमत्स्यमृगान्हन्ति) इस सूत्र में मत्स्य शब्द से अपने स्वरूप और उस के विशेषवाची शब्दों का ग्रहण होना इष्ट है। जैसे। मत्स्यान्हन्ति मात्स्यिकः। यहां स्वरूप का ग्रहण और उस के विशेष वाची। शाफरिकः। शाकुलिकः। इत्यादि पर्यायवाची अजिह्म आदि शब्दों का ग्रहण नहीं होता परन्तु एक पर्यायवाची का भी ग्रहण इष्ट है। मीनान्हन्ति मैनिकः ॥ १०८ ॥

१८१ अणुदित्सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः ॥१०९॥ १।१।८४॥

अण् प्रत्याहार और उदित् ये दोनों अपने सवर्णों के ग्रहण करने वाले हैं अर्थात् इन को जो कार्य विधान किया हो वह इन के सवर्णियों को भी हो परंतु प्रत्यय का अण् सवर्ण का ग्राहक न हो पूर्व सूत्र से (स्वं रूपं०) इन दो शब्दों की अनुवृत्ति आती है। अण् प्रत्याहार इस सूत्र में पर णकार से लिया जाता है और उदित् करके कु, चु, टु, तु, पु, ये पांच अक्षर। जैसे (अस्य च्वौ) यहां अकार को कार्य कहा है सो आकार को भी होता है तथा उदित् (चुटू) यहां चवर्ग टवर्ग का और (अट्कुप्वां०) यहां कु, पु शब्दों से कवर्ग पवर्ग का ग्रहण होता है। इस सूत्र में प्रत्यय का निषेध इस लिये है कि। अ, उ। इन प्रत्ययों के दीर्घ वर्णों का ग्रहण न हो ॥ १०९ ॥

१८२ तपरस्तत्कालस्य ॥ ११० ॥ १।१।८५ ॥

जिस से तकार परे हो वा जो वर्ण तकार से परे आवे वह उतने ही काल और अपने रूप का बोधक हो अर्थात् तपर ह्रस्व वर्ण को कार्य

विधान किया हो तो दीर्घ और प्लुत को न हो जैसे (ऋत्) यहां दीर्घ आकार का ग्रहण नहीं होता क्योंकि उस के उच्चारण में द्विगुण काल लगता है तथा जहां २ सूत्रों में अकार तपर पढ़ा है उस का प्रयोजन यह है कि उदात्त अनुदात्त और स्वरित का भी ग्रहण हो क्योंकि उदात्तादिकों में कालभेद नहीं होता ह्रस्व स्वरों में पूर्व सूत्र से सामान्य करके सवर्ण ग्रहण प्राप्त था सो इस सूत्र से ह्रस्व तपर स्वरों में अधिक काल वाले दीर्घ प्लुत का निषेध कर दिया है। तथा पूर्वसूत्र से दीर्घ-स्वरों में सवर्ण ग्रहण प्राप्त नहीं था सो इस सूत्र से तत्काल के ग्रहण में उदात्तादि विशेष गुणों का भी ग्रहण हो जाता है ॥ ११० ॥

१८३ येन विधिस्तदन्तस्य ॥ १११ ॥ १ । १ । ८६ ॥

जिस विशेषण करके विधि हो वह जिस के अंत में हो उस को कार्य हो । जैसे । अचो यत् । यहां अचः यह पद धातु का विशेषण होने से अंत शब्द का लाभ करके जो अच् को कार्य विधान है सो अजन्त को होता है । भव्यम् । इत्यादि ॥ १११ ॥

१८४ वा०—समासप्रत्ययविधौ प्रतिषेधः ॥ ११२ ॥

समासविधान और प्रत्ययविधान में तदन्तविधि न हो समासविधान में जैसे । कष्टश्रितः । यहां तो समास होता है और । परमकष्टं श्रितः । यहां तदन्त का समास नहीं होता । प्रत्ययविधि । नडस्यापत्यं नाडायनः । यहां तो प्रत्ययविधान होता है और सूत्रनडस्यापत्यं सौत्रनाडिः । यहां तदन्त से फक् प्रत्यय नहीं हुआ । इत्यादि ॥ ११२ ॥

१८५ वा०—उगिद्वर्णग्रहणवर्जम् ॥ ११३ ॥

पूर्व वार्तिक से जो निषेध किया है सो प्रत्यय विधि में सर्वत्र नहीं लगता अर्थात् उगित् ग्रहण और वर्णग्रहण को छोड़ के जैसे । भवती ।

यहां उदित् भवत् शब्द से ङीप् प्रत्यय होता है तो । अतिभवती । यहां तदन्त से भी होजावे । वर्णग्रहण । अत इञ् । दाक्षिः । इत्यादि में भी अदन्त से भी प्रत्ययविधान होता है ॥ ११३ ॥

१८६ अचश्च ॥ ११४ ॥ १ । १ । २८ ॥

जहां २ व्याकरण शास्त्र में ह्रस्व दीर्घ और प्लुत विधान करें वहां २ अच् ही के स्थान में हों जैसे (ह्रस्वो नपुंसके प्रातिपदिकस्य) यहां प्रातिपदिक को ह्रस्व कहा है जैसे (रै) अतिरि । यहां ऐकार को इकार और । अधिनु । यहां औकार को उकार होता है । यहां अच् ग्रहण इस लिये है कि । सुवाग्ब्राह्मणकुलम् । इत्यादि प्रयोगों में हलन्त को ह्रस्व न हो दीर्घ । अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः । स्तु । श्रु । स्तूयते । श्रूयते । यहां उकार के स्थान में ऊकार दीर्घ हुआ है । अच् का नियम इस लिये है कि । अग्निचीश्त् । यहां तकार के स्थान में प्लुत न हो जावे । परंतु जहां संज्ञा शब्दों से ह्रस्व दीर्घ और प्लुत पढ़े हों वहीं अच् के स्थान में हों यह नियम इस लिये है कि । त्यदादीनामः । अकारादेश कहा है और अकार की ह्रस्व संज्ञा है तो यहां अच् की अपेक्षा न हो इत्यादि ॥ ११४ ॥

१८७ यथासंख्यमनुदेशः समानाम् ॥ ११५ । १ । ३ । १० ॥

जहां २ बराबर संख्या वालों का कार्य में सम्बन्ध करना हो वहां २ यथासंख्य अर्थात् जैसा उन का क्रम पढ़ा हो वैसा ही सम्बन्ध किया जावे जैसे (एचोऽयवायावः) यहां एच् प्रत्याहार में चार वर्ण हैं सो ही । अय् । अव् । आय् । आव् । चार आदेश हैं सो प्रथम के स्थान में प्रथम) द्वितीय के स्थान में द्वितीय तृतीय के स्थान में तृतीय और चतुर्थ के स्थान में चतुर्थ होते हैं । इसी प्रकार सर्वत्र यह नियम जान लेना

यहां (समानाम्) ग्रहण इस लिये है कि । लक्षणेत्थम्भूताख्यानभागवीप्सासु प्रतिपर्यनवः । यहां चार अर्थ और तीन उपसर्ग हैं इस से यथासंख्य क्रम नहीं लगता इत्यादि ॥ ११५ ॥

१८८ स्वरितेनाऽधिकारः ॥ ११६ । १ । ३ । ११ ॥

उस स्वरित के चिन्ह से अधिकार का बोध करना चाहिये जो अक्षर के ऊपर खड़ी रेखा लगाते हैं वह वर्ण का स्वरित धर्म होता है जैसे । प्रत्ययः । धातोः । कर्मण्यण् । इत्यादि । अब जिस के ऊपर स्वरित का चिन्ह किया हो वह अधिकार कहां तक जावे गा यह बात उस २ के विशेष व्याख्यान से जानना ॥ ११६ ॥

१८९ विप्रतिषेधे परं कार्य्यम् ॥ ११७ । १ । ४ । २ ॥

विप्रतिषेध में पर को कार्य होना चाहिये । इतरेतरप्रतिषेधो विप्रतिषेधः । जो परस्पर एक दूसरे का रोकना है वह विप्रतिषेध कहाता है ॥ द्वौ प्रसंगौ यदान्यार्थौ भवत एकस्मिँश्च युगपत्प्राप्नुतः स विप्रतिषेधः । जो पृथक् २ प्रयोजन वाले दो कार्य एक विषय में एक काल में प्राप्त होते हैं उस को विप्रतिषेध कहते हैं जैसे । वृक्षाभ्याम् । यहां (अतो-दीर्घो यञि) इस से दीर्घ होता है और । वृक्षेषु । (बहुवचने झल्येत्) इस से एकारादेश होता है ये तो इन के पृथक् २ प्रयोजन हैं । परंतु (वृक्षेभ्यः) यहां जो दो सूत्रों की प्राप्ति एक काल में हो कर वृक्ष शब्द को दीर्घ और एकारादेश दोनों ही प्राप्त होते हैं इस का न्याय परिभाषा सूत्र से किया है कि पर का कार्य एकारादेश हो जावे और पूर्व सूत्र का कार्य दीर्घादेश न हो । इत्यादि असंख्य प्रयोजन हैं ॥११७॥

१९० अन्तादिवच्च ॥ ११८ । ६ । १ । ८४ ॥

जो पूर्व पर के स्थान में एकादेश विधान किया है सो पूर्व का अन्त अवयव और पर का आदि अवयव समझना चाहिये । पूर्व पर और एक

शब्द की अनुवृत्ति इस के पूर्व सूत्र से आती है इस के प्रयोजन । जैसे । पूर्व का अन्तवत् । ब्रह्मबन्धूः । यहां ऊकारान्त शब्द से ऊङ् प्रत्यय होता है । ऊकारान्त तो प्रातिपदिक और अप्रातिपदिक प्रत्यय का ऊकार है इन दोनों ऊकारों का एकादेश प्रातिपदिक के ग्रहण करके गृहीत होने से स्वादि प्रत्ययों की उत्पत्ति होती है अन्यथा नहीं हो सकती । इत्यादि । पर का आदिवत् । अग्नी इति । वायू इति । यहां अकार औकार का एकादेश हुआ है द्विवचन औकार को आदिवत् होने से ही प्रगृह्यसंज्ञा हो सकती है अन्यथा नहीं हो सकती यों इत्यादि ॥ ११८ ॥

१९१ षत्वतुकोरसिद्धः ॥ ११९ । ६ । १ । ८९ ॥

जो षत्व और तुक् विधि के करने में पूर्वपर के स्थान में एकादेश है वह सिद्ध कार्य करने में असिद्ध हो जाता है जैसे षत्व । कोऽसिचत् । यहां अकार को पूर्वरूपएकादेश हुआ है उस को षत्वविधि करने में असिद्ध मान के षत्व नहीं होता इत्यादि । तुक्विधि । अधीत्य । परीत्य । यहां सवर्णदीर्घ एकादेश को असिद्ध मान के ह्रस्व से परे तुक् का आगम होता है इत्यादि ॥ ११९ ॥

१९२ वा०—संप्रसारणङीट्सु सिद्धः ॥ १२० ॥

परन्तु जहां संप्रसारण ङि विभक्ति और इट् प्रत्यय के साथ एकादेश हुआ हो तो वहां षत्व और तुक्विधि करने में एकादेश सिद्ध ही माना जावे । क्योंकि सूत्र से निषेध प्राप्त था उसी प्रतिषेध का यह प्रतिषेध है जैसे । संप्रसारण । शकहूषु । यहां शक पूर्वक ह्वेञ् धातु से क्विप् के परे संप्रसारण को पूर्वरूप एकादेश हुआ है । उस को असिद्ध मानने से सप्तमी विभक्ति के सकार को षत्व नहीं पाता था इस से हो गया ।

ङि । वृत्तेछत्रम् । वृत्तेच्छत्रम् । यहां वृत्त शब्द का ङि विभक्ति के इकार के साथ एकादेश हुआ है जो उस को असिद्ध माने तो पूर्ववत् नित्य तुक् पाता है (पदान्ताद्वा) विकल्प इष्ट है सो हो गया इत्यादि ॥१२०॥

११३ पूर्वत्राऽसिद्धम् ॥ १२१ । ८ । २ । १ ॥

जो कार्य यहां से पूर्व सपादसप्ताऽध्यायी अर्थात् एक पाद और सात अध्याय में जितना शब्द कार्य्य कहा है वहां सर्वत्र त्रिपादी का किया कार्य असिद्ध माना जावे । और त्रिपादी में भी पूर्व २ के प्रति पर २ सूत्र का कार्य असिद्ध माना जाय जैसे । पादा उच्येते । यहां (लोपः शाकल्यस्य) इस सूत्र से अवर्ण पूर्व वकार का लोप हुआ है उस को असिद्ध मान के गुण एकादेश रूप सन्धि नहीं होता । अम्र आयाहि । यहां भी अवर्ण से पूर्व यकार का लोप होने से उस को असिद्ध मान के सवर्ण दीर्घ नहीं होता इत्यादि । त्रिपादी में । गोधुङ्मान् । यहां दुह धातु के हकार को घकार घकार को गकार और गकार को ङकार और दकार को धकार होता है । इन सब को असिद्ध मान के मतुप् के मकार को वकारादेश नहीं होता इत्यादि ॥ १२१ ॥

११४ न लोपः सुप्स्वरसंज्ञातुग्विधिषु कृति ॥१२२।८।२।२॥

परन्तु प्रातिपदिकान्त नकार का जो लोप होना है वह सुप् । स्वर। संज्ञा । और कृत्सम्बन्धी तुग्विधि इन्हीं विधियों के करने में असिद्ध माना जावे । सुप्विधि में दो प्रकार का समास होता है सुप् के स्थान में जो विधि और सुप् के परे जो विधि जैसे सुप् के स्थान में जो विधि । राजभिः । तक्षभिः । यहां राजन् तक्षन् शब्द के नकार का लोप हुआ है उस को असिद्ध न मानें तो भिस् विभक्ति को ऐस् आदेश हो ही जावे सो इष्ट नहीं है तथा सुप् के परे जो विधि । राजभ्याम् । तक्षभ्याम् ।

यहां नलोप को असिद्ध मानने से विभक्ति के परे दीर्घ नहीं होता। स्वरविधि। पंचार्मम्। सप्तार्मम्। यहां पंचन् और सप्तन् शब्द के नकार का लोप हुआ है उस को असिद्ध मान के (अर्मेचाऽवर्णाद्व्यच्त्र्यच्) इस स्वरविधायक सूत्र से अवर्णान्त पूर्वपद को आद्युदात्त स्वर प्राप्त है सो नहीं होता क्योंकि नलोप के असिद्ध मानने से अवर्णान्त ही नहीं। संज्ञाविधि। पंचभिः। यहां पंचन् और सप्तन् शब्द के नकार का लोप हुआ है उस को असिद्धमान के षट्संज्ञा होती और तदाश्रय षट्संज्ञा के कार्य भी होते हैं। तुक्विधि। ब्रह्महभ्याम् ब्रह्महभिः। यहां न लोप को असिद्ध मान के जो कृत् के आश्रय से तुक् प्राप्त है सो नहीं होता। यहां कृद् ग्रहण इस लिये है कि। ब्रह्महच्छत्रम्। यहां जो छकाराश्रय तुगागम है सो हो जावे इत्यादि (प्र०) पूर्वत्रा-ऽसिद्धम्) इस उक्त सूत्र से ही त्रिपादी के सब कार्य्य असिद्ध हो जाते फिर यह सूत्र किस लिये किया (उ०) यह सूत्र नियमार्थ है कि इतने ही विधियों के करने में नकार का लोप असिद्ध माना जावे अन्यत्र नहीं इस से। राजीयति। यहां ईकारादेश अवर्णान्त मान के हो जाता है इत्यादि ॥ १२२ ॥

१९५ नमुने ॥ १२३ ॥ ८ । २ । ३ ॥

नाभाव करने में मुभाव असिद्ध नहीं होता। अर्थात् सिद्ध ही माना-जाता है जैसे। अमुना। यहां अदस् शब्द के दकार को मकार और अकार को उकारादेश त्रिपादी में होता है उस को असिद्ध नहीं मानने से घिसंज्ञक से परे टा विभक्ति को ना आदेश हो जाता है। नाभाव कर-लेने के पीछे जो मुभाव को असिद्ध मानें तो अदन्त अंग को दीर्घ प्राप्त होता है इस लिये ऐसा अर्थ करना कि नाभाव के करने में और करने के पश्चात् भी मुभाव सिद्ध ही माना जावे इत्यादि ॥ १२३ ॥

१९६ वा०—संयोगान्तलोपो रोरुत्वे ॥ १२४ ॥

यहां रु को उकारादेश करने में संयोगान्तलोप सिद्ध माना जाता है। जैसे। हरिवो मेदिनं त्वा। यहां जो हरिवन्त् शब्द में संयोगान्त तकार का लोप असिद्ध माना जावे तो हश् के न होने से उत्व प्राप्त नहीं होता इत्यादि ॥ १२४ ॥

१९७ वा०—सिज्लोप एकादेशे सिद्धो वक्तव्यः ॥ १२५ ॥

सवर्णदीर्घ एकादेश के करने में त्रिपादी में विहित सिच् प्रत्यय का लोप सिद्ध हो समझना चाहिये जैसे। अलावीत्। अपावीत्। यहां इट् से परे सिच् के सकार का लोप ईट् के परे हुआ है पश्चात् उस सकार के लोप को असिद्ध मानें तो सवर्णदीर्घ एकादेश नहीं पावे इत्यादि ॥ १२५ ॥

१९८ वा०—संयोगादि लोपः संयोगान्तलोपे ॥ १२६ ॥

जो त्रिपादी में संयोगादि सकार ककार का लोप होता है वह संयोगान्त लोप करने में सिद्ध माना जावे जैसे। काष्ठतट्। यहां संयोगादि ककार का लोप संयोगान्त लोप में सिद्ध मानने से संयोगान्त टकार का लोप नहीं होता। इत्यादि ॥ १२६ ॥

१९९ वा०—निष्ठादेशः षत्वस्वरप्रत्ययेड्विधिषु सिद्धो वक्तव्यः ॥ १२७ ॥

जो निष्ठा संज्ञक प्रत्ययों के स्थान में आदेश होते हैं वे षत्व स्वर प्रत्यय और इट् विधि के करने में सिद्ध मानने चाहिये जैसे। षत्वविधि। वृक्णः। वृक्णवान्। यहां ओदित् धातु से निष्ठा के तकार को नकारादेश हुआ है। उस को सिद्ध मानने से (व्रश्चभ्रस्ज०) इस करके षत्व नहीं होता इत्यादि स्वरविधि। क्षीवः। यहां क्षीवधातु से निष्ठा के परे इतनात्त का लोप माना है (क्षीव्—इट्—क्त) इस अवस्था में निपातन

से इट् का इ और क्त का त् इस प्रकार इत् का लोप हो कर क्त के अ में व मिल के द्यीवः बनता है—उस को सिद्ध मान के (निष्ठा च द्व्यजनात्) इस से आद्युदात्त स्वर हो जाता है। प्रत्ययविधि। द्यीवेन तरति द्यीविकः। यहां भी उस लोप के सिद्ध मानने से हो। द्व्यच् लक्षण ठन् प्रत्यय होता है। इट्विधि। द्यीवः। इस को जब तकार के स्थान में वकारादेश निपातन मानते हैं तब उस को सिद्ध मान के इट् नहीं होता ॥ १२७ ॥

२०० वा०—प्लुतिस्तुग्विधौ छे च ॥ १२८ ॥

जो त्रिपादी में विधान किया हुआ प्लुतस्वर है वह छकार के परे तुक्विधि करने में सिद्ध ही समझना चाहिये। जैसे। अग्ना३इच्छत्रम्। पटा३उच्छत्रम्। यहां प्लुत को सिद्धमान के तुक् का आगम हो जाता है ॥ १२८ ॥

२०१ वा०—श्चुत्वं धुड्विधौ ॥ १२९ ॥

जो शकार चवर्ग के योग में सकार तवर्ग को शकार चवर्ग होते हैं। उन को धुड्विधि में सिद्ध मानना चाहिये जैसे। अट् श्च्योतति। यहां शकार को सिद्ध मानने से (ङःसि धुट्) इस सूत्र कर के धुट् का आगम नहीं होता ॥ १२९ ॥

२०२ वा०—अभ्यासजश्त्वचर्त्वमेत्वतुकोः ॥ १३० ॥

जो अभ्यास में झलों को जश्त्व और चर्त्व त्रिपादी में कहा है उस को एत्व और तुक् के करने में सिद्ध मानना चाहिये। जैसे। बभणतुः। बभणुः। यहां अभ्यास के भकार को बकारादेश हुआ है उस को सिद्ध मानने से आदेशादि धातु को एत्व नहीं होता। चर्त्व। उचिच्छिषति। यह उच्छी विवासे धातु का प्रयोग है उस के अभ्यास में

चक्रारादेश होता है उस को असिद्ध मानने से तुक् पाता है सो सिद्धमान के न होवे ॥ १३० ॥

२०३ वा०—द्विर्वचने परसवर्णत्वम् ॥ १३१ ॥

जहां २ (अनचि च) करके द्विर्वचन करते हैं वहां २ परसवर्ण सिद्ध ही मानना चाहिये । जैसे । सँय्यन्ता । सँव्वत्सरः । यँल्लोकम् । तँल्लोकम् । इत्यादि में अनुस्वार को परसवर्ण आदेश होता है उस को सिद्ध मानने से द्विर्वचन होता है इत्यादि ॥ १३१ ॥

इति परिभाषाप्रकरणं समाप्तम् ॥

महेश्वरः । कृपा—उद्घाटनम् । कृपोद्घाटनम् । रक्षा—ऊहः । रक्षोहः । महा—ऋषिः । महर्षिः । इसी प्रकार अन्य शब्दों में भी उदाहरण आवें गे ॥ १३६ ॥

२०९ वृद्धिरेचि ॥ १३७ । ६ । १ । ८७ ॥

अवर्ण से एच् प्रत्याहार परे हो तो पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश होजाय । यह सूत्र गुणादेश का अपवाद है एच् प्रत्याहार में चार वर्ण आते हैं ए ऐ ओ औ इन चार वर्णों के परे वृद्धि होती है। अ—ए । अ—ऐ । अ—ओ । अ—औ । आ—ए । आ—ऐ । आ—ओ । आ—औ । इसी रीति से आठ प्रकार की वृद्धि होती है जैसे ब्रह्म—एकम् । ब्रह्मैकम् । परम—ऐश्वर्य्यम् । परमैश्वर्य्यम् । गुड़—ओदनः । गुड़ौदनः । रम—औषधम् । परमौषधम् । महा—ओजस्वी । महौजस्वी । क्षमा—एका । पैका । विद्या—ऐहिकी । विद्यैहिकी । खट्वा—औपगवः । खट्वौपगवः ।
प्र
इन गुण वृद्धि के विशेष अपवादरूप सूत्र लिखते हैं ॥ १३७ ॥
दो

१० एत्येधत्यूठ्सु ॥ १३८ ॥ ६ । १ । ८९ ॥

परम
आनन्द
वर्ण से एति एधति और ऊठ् परे हों तो पूर्वपर के स्थान में वृद्धि आवें गे । हो । यहां एति और एधति इन दो धातुओं के परे (एङि जैसे प्रति—इ । पररूप एकादेश पाता था इस लिये वृद्धि का आरम्भ ऊठ आदेश में गुण पाता था उस का अपवाद है। उप—महीनः । कुमार । —एमि । उपैमि । प्र—एधते । प्रैधते । इस ९ प्रकार का विषय है । जैसे ऊहः । प्रष्ठौहः । प्रष्ठ—ऊह ऊ—ऊ । क्रम से उदाहरण । विधु—उदयः । विधूदयः । मधु—ऊर्णा । मधूर्णा । चमू—उद्गमः । चमूद्गमः । बधू—ऊतिः । बधूतिः । ऋवर्ण के विषय में भी ऐसा ही समझना परन्तु लिखते भी हैं । पितृ—ऋणम् । पितृणम् । इत्यादि । परन्तु ऋ लृ दो वर्णों में इतना विशेष है ॥ १३३ ॥

चकारादेश होता है उस को असिद्ध मानने से तुक् पाता है सो सिद्धमान के न होवे ॥ १३० ॥

२०३ वा०—द्विर्वचने परसवर्णत्वम् ॥ १३१ ॥

जहां २ (अनचि च) करके द्विर्वचन करते हैं वहां २ परसवर्ण सिद्ध ही मानना चाहिये । जैसे । सँय्यन्ता । सँव्वत्सरः । यँल्लोकम् । तँल्लोकम् । इत्यादि में अनुस्वार को परसवर्ण आदेश होता है उस को सिद्ध मानने से द्विर्वचन होता है इत्यादि ॥ १३१ ॥

इति परिभाषाप्रकरणं समाप्तम् ॥

र
र्घ
: ।
को

देश होता २ ... में गुण एका-
आ—इ । आ—ई । आ—उ । आ—ऊ । अ ... —ऊ । अ—ऋ । यह दश प्रकार का गुण एकादेश होता है । क्रम से उदाहरण । प्र—इदम् । प्रेदम् । परम—ईशः । परमेशः । सूर्य—उदयः । सूर्योदयः । शब्द—ऊहा । शब्दोहा । ब्रह्म—ऋषिः । ब्रह्मर्षिः । यहां अकार ऋकार के स्थान में सूत्र से रपर अर्थात् अर् आदेश हो गया है । कन्या—इयम् । कन्येयम् । महा—ईश्वरः ।

महेश्वरः । कृपा—उद्घाटनम् । कृपोद्घाटनम् । रक्षा—ऊहः । रक्षोहः । महा—ऋषिः । महर्षिः । इसी प्रकार अन्य शब्दों में भी उदाहरण आवेंगे ॥ १३६ ॥

२०९ वृद्धिरेचि ॥ १३७ । ६ । १ । ८७ ॥

अवर्ण से एच् प्रत्याहार परे हो तो पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश होजाय । यह सूत्र गुणादेश का अपवाद है एच् प्रत्याहार में चार वर्ण आते हैं ए ऐ ओ औ इन चार वर्णों के परे वृद्धि होती है। अ—ए । अ—ऐ । अ—ओ । अ—औ । आ—ए । आ—ऐ । आ—ओ । आ—औ । इसी रीति से आठ प्रकार की वृद्धि होती है जैसे ब्रह्म—एकम् । ब्रह्मैकम् । परम—ऐश्वर्य्यम् । परमैश्वर्य्यम् । गुड़—ओदनः । गुड़ौदनः । परम—औषधम् । परमौषधम् । महा—ओजस्वी । महौजस्वी । क्षमा—एका । क्षमैका । विद्या—ऐहिकी । विद्यैहिकी । खट्वा—औपगवः । खट्वौपगवः । अब इन गुण वृद्धि के विशेष अपवादरूप सूत्र लिखते हैं ॥ १३७ ॥

२१० एत्येधत्यूठ्सु ॥ १३८ ॥ ६ । १ । ८९ ॥

अवर्ण से एति एधति और ऊठ् परे हों तो पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश हो । यहां एति और एधति इन दो धातुओं के परे (एङि पररूपम्) से पररूप एकादेश पाता था इस लिये वृद्धि का आरम्भ किया है और ऊठ् आदेश में गुण पाता था उस का अपवाद है। उप—एति । उपैति । उप—एमि । उपैमि । प्र—एधते । प्रैधते । उप—एधते । उपैधते । ऊठ् । प्रष्ठ—ऊहः । प्रष्ठौहः । प्रष्ठ—ऊहे । प्रष्ठौहे ॥ १३८ ॥

२११ वा—अक्षादूहिन्याम् ॥ १३९ ॥

अक्ष शब्द के आगे ऊहिनी शब्द हो तो पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है । जैसे अक्ष—ऊहिनी । अक्षौहिणी यहां गुण एकादेश की बाधक वृद्धि है ॥ १३९ ॥

२१२ वा०—प्रादूहोढोढ्येषैष्येषु ॥ १४० ॥

प्र उपसर्ग के आगे ऊह, ऊढ़, ऊढ़ि, एष और एष्य, शब्द हों तो पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है जैसे । प्र—ऊहः । प्रौहः । प्र—ऊढः । प्रौढः । प्र—ऊढिः । प्रौढिः । प्र—एषः । प्रैषः । प्र—एष्यः । प्रैष्यः । इन दो शब्दों में पूर्वपर के स्थान में गुण को बाध के वृद्धि हो जाती है ॥ १४० ॥

२१३ वा०—स्वादीरेरिणोः ॥ १४१ ॥

स्व शब्द के आगे इर और इरिन् शब्द हों तो पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है जैसे । स्व—इरम् । स्वैरम् । स्व—इरी । स्वैरी । यहां गुण पाता था सो न हुआ ॥ १४१ ॥

२१४ ऋते च तृतीयासमासे ॥ १४२ ॥

अवर्णान्त पूर्वपद के आगे तृतीयासमास में ऋत शब्द हो तो पूर्व पर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है । सुखेन—ऋतः । सुखार्तः । दुःखेन—ऋतः । दुःखार्तः । यहां ऋत ग्रहण इस लिये है कि । सुख—इतः । सुखेतः । ऐसे वाक्यों में वृद्धि न हो तृतीयाग्रहण लिये है कि । परम-ऋतः । परमर्तः । यहां भी वृद्धि एकादेश न हो और समास ग्रहण इस लिये है कि । सुखेन—ऋतः । सुखेनर्तः । यहां भी वृद्धि एकादेश न हुआ । यहां गुण और प्रकृतिभाव भी पाया था ॥ १४२ ॥

२१५ वा०—प्रवत्सतरकम्बलवसनानां च ऋणे ॥ १४३ ॥

प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन, इन शब्दों के आगे ऋण शब्द हो तो पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है जैसे । प्र—ऋणम् । प्रार्णम् । वत्सतर—ऋणम् । वत्सतरार्णम् । कम्बल—ऋणम् । कम्बलार्णम् । वसन-ऋणम् । वसनार्णम् । यहां सर्वत्र गुण और प्रकृतिभाव पाया था ॥ १४३ ॥

२१६ वा०—ऋणदशाभ्यां च ॥ १४४ ॥

ऋण और दश शब्द के आगे ऋणशब्द हो तो पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश होता है जैसे । ऋण—ऋणम् । ऋणार्णम् । दश—ऋणम् । दशार्णम् । यहां भी गुण और प्रकृतिभाव दोनों पाये थे ॥ १४४ ॥

२१७ उपसर्गादृति धातौ ॥ १४५ ॥ ६ । १ । ९१ ॥

अवर्णान्त उपसर्ग से परे ऋकारादि धातु हो तो पूर्वपर के स्थान में वृद्धि एकादेश हो जाय । यह सूत्र भी गुण एकादेश का बाधक है । प्र—ऋच्छति । प्रार्च्छति । उप—ऋच्छति । उपार्च्छति । प्र—ऋध्नोति । प्रार्ध्नोति । यहां उपसर्ग ग्रहण इस लिये है कि । खट्वा—ऋच्छति । खट्वर्च्छति । यहां वृद्धि न हुई ॥ १४५ ॥

२१८ वा सुप्यापिशलेः ॥ १४६ ॥ ३ ॥

अवर्णान्त उपसर्ग से परे ऋकारादि सुबन्त ॥ १५४ ॥ ६ । १ । ९८ ॥
में विकल्प करके वृद्धि एकादेश हो ... अर्थक्त शब्द का जो अनुकरण उस के
यह बात आपिशलि आचार्य ... देश हो जावे जिस में अकारादि वर्णस्पष्ट न
की अनुवृत्ति आती है । शब्द कहते हैं । अनुकरण वह कहाता है कि
विकल्प के लिये वा शब्द ... क्रिया हो उस का प्रतिशब्द (नकल) करनी
ग्रहण है सो सत्कारार्थ है ॥ घटत्—इति । घटिति । इत्यादि । यहां ।
... हा है कि । जगत्—इति । जगदिति ।

२१९ एङि पररूपम् ॥ १४७ ॥ १५४ ॥

अवर्णान्त उपसर्ग से परे एङादि धातु ... ॥ १५५ ॥
पररूप एकादेश होता है । यह सूत्र वृद्धि ... अनुकरण को पररूप एका-
प्रेलति । उप—एलति । उपेलति । प्र—ओषति । ... हो । अर्थात् अत्—इति
... न हुआ ॥ १५५ ॥
उपोषति ॥ १४७ ॥

२२० वा०—एवेचानियोगे ॥ १४८ ॥

अनियोग अर्थात् अनियत अर्थ में अवर्णान्त से परे एव शब्द होतो पूर्वपर के स्थान में पररूप एकादेश हो जाय। इह—एव । इहेव । अद्य एव । अद्येव । यहां अनियोग ग्रहण इस लिये है कि (इहैव भव मा-स्मगाः) यहां नियोग के होने के कारण पररूप न हुआ ॥ १४८ ॥

२२१ वा०—शकन्ध्वादिषु च ॥ १४६ ॥

शकन्धु आदि शब्दों में पूर्वपर के स्थान में पररूप एकादेश होता है । जैसे शक—अन्धुः । शकन्धुः । कुल—अटा । कुलटा । इत्यादि ॥१४६॥ सीमन्त शब्द भी शकन्ध्वादि शब्दों के सदृश है परन्तु इस में भेद यह है कि—

२२२ वा०—ऋते च तृतीयासमासे ॥ १५० ॥

अवर्णान्त पूर्वपद के अ सीम शब्द से अन्त शब्द के परे पूर्वपर पर के स्थान में वृद्धि एकादे। जाय जैसे । सीम—अन्तः । सीमन्तः । दुःखेन—ऋतः । दुःखार्तः । यहां ऋत ग्रहण पररूप एकादेश न हो अर्थात् सुखेतः । ऐसे वाक्यों में वृद्धि न हो तृतीयाग्र हुआ किन्तु सवर्णदीर्घ ऋतः । परमर्तः । यहां भी वृद्धि एकादेश न

लिये है कि । सुखेन—ऋतः । सुखेनर्तः । ॥ १५१ ॥

हुआ । यहां गुण और प्रकृतिभाव भी ष्ठ शब्दों का समास किया हो तो

२१५ वा०—प्रवत्सतरकम्बलव पररूप एकादेश होता है पक्ष में वृद्धि

प्र, वत्सतर, कम्बल, वसन तक से वृद्धि प्राप्ति में पररूप एकादेश

पूर्वपर के स्थान में वृद्धि ए तुः । स्थूलोतुः । स्थूलौतुः । बिम्ब—ओष्ठी ।

वत्सतर—ऋणम् । वत्स यहां समास ग्रहण इस लिये है कि । एहि बालो-

ऋणम् । वसनार्ण हां समास के न होने से पररूप नहीं हुआ ॥ १५१ ॥

२२४ वा०—एमन्नादिषु छन्दसि ॥ १५२ ॥

वेदस्थ प्रयोगों में अवर्ण से परे एमन् आदि शब्द हों तो पररूप एकादेश हो जैसे। अपां त्वा—एमन् । अपांत्वेमन् । अपां त्वा—ओद्मन् । अपांत्वोद्मन् । इत्यादि यहां वृद्धि पाई थी सो न हुई ॥ १५२ ॥

२२५ ओमाङोश्च ॥ १५३ ॥ ६ । १ । ९५ ॥

जो अवर्णान्त शब्द से परे ओम् और आङ् शब्द हों तो पूर्वपर के स्थान में पररूप एकादेश होता है जैसे । कन्या—ओमित्युवाच । कन्योमित्युवाच । यह नियम केवल आङ्विषयक ही नहीं है किन्तु । आ—उनत्ति । ओनत्ति । अद्य—ओनत्ति । अद्योनत्ति । कदा—ओनत्ति । कदोनत्ति । जैसे यहां आकार का उकार के साथ पररूप एकादेश होता है वैसे उस को पर का आदिवत् मान के पुनः पररूप एकादेश होता है । यहां भी वृद्धि प्राप्त थी सो न हुई ॥ १५३ ॥

२२६ अव्यक्ताऽनुकरणस्यात इतौ ॥ १५४ ॥ ६ । १ । ९८ ॥

जो इति शब्द परे हो तो अव्यक्त शब्द का जो अनुकरण उस के अत् भाग को पररूप एकादेश हो जावे जिस में अकारादि वर्णस्पष्ट न निकलें उस को अव्यक्त शब्द कहते हैं । अनुकरण वह कहाता है कि किसी मनुष्य ने जैसा शब्द किया हो उस का प्रतिशब्द (नकल) करनी जैसे पटत्—इति । पटिति । घटत्—इति । घटिति । इत्यादि । यहां । अव्यक्त का अनुकरण इस लिये कहा है कि । जगत्—इति । जगदिति । ऐसे वाक्यों में पररूप एकादेश न हुआ ॥ १५४ ॥

२२७ वा०—इतावनेकाज्ग्रहणं श्रदर्थम् ॥ १५५ ॥

जहां इति शब्द के परे अव्यक्त शब्द के अनुकरण को पररूप एकादेश किया है वहां अनेकाच् अव्यक्त शब्द को हो । अर्थात् श्रत्—इति श्रदिति । यहां एकाच् शब्द के अत् भाग को पररूप न हुआ ॥ १५५ ॥

२२८ तस्य परमाम्रेडितम् ॥ १५६ ॥ ८ । १ । २ ॥

जो द्विर्वचन का पर भाग है उस की आम्रेडित संज्ञा होती है। जैसे ऋक् ऋक्। यहां जो परे ऋक् शब्द है उस को आम्रेडित कहते हैं। इसी प्रकार सर्वत्र समझना ॥ १५६ ॥

२२९ नाम्रेडितस्यान्त्यस्य तु वा ॥ १५७ ॥ ६ । १ । ९९॥

जो आम्रेडितसंज्ञक अव्यक्त शब्द के अनुकरण का अंतभाग हो उस को इति शब्द के परे पररूप एकादेश न हो किन्तु जो आम्रेडित संज्ञक के अन्त में तकार है उस को विकल्प करके पररूप एकादेश होवे। पटत् पटत् यहां पर भाग आम्रेडित कहाता है। पटत्पटत्—इति। पटत् पटेति। और जिस पक्ष में पररूप न हुआ वहां। पटत्पटदिति ॥१५७॥

२३० वा०—नित्यमाम्रेडिते डाचि पररूपङ्कर्त्तव्यम् ॥ १५८ ॥

इस वार्तिक का प्रयोजन यह है कि जो अनुकरण में डाच् प्रत्ययान्त आम्रेडित परे हो तो पूर्व के अन्त्य के तकार को नित्य पररूप एकादेश होजाय जैसे। पटत्पटा। यहां तकार का पर अर्थात् पकार का रूप हो जाता है। पटपटा करोति। पटपटायते। घटघटा करोति घटघटायते। शरशरा करोति। शरशरायते। काशिका वाले जयादित्य आदि लोगों ने इस वार्तिक का सूत्रपाठ में व्याख्यान किया है सो सत्य नहीं महाभाष्य के देखने से स्पष्ट विदित होता है कि यह सूत्र नहीं है किन्तु लेखक भ्रम से सूत्रों में लिखा गया है ॥ १५८ ॥

२३१ एङः पदान्तादति ॥ १५९ ॥ ६ । १ । १०९ ॥

जो पदान्त एङ् से परे ह्रस्व अकार हो तो पूर्वपर के स्थान में पूर्वरूप एकादेश होता है जैसे अग्ने अत्र—अग्नेऽत्र। वायो अत्र—वायोऽत्र।

ब्राह्मणो अब्रवीत्—ब्राह्मणोऽब्रवीत्। गुरवे अदात्—गुरवेऽदात्। अत् ग्रहण इस लिये है कि वायोइति यहां पूर्वरूप न हुआ ॥ १५९ ॥

२३२ प्रकृत्यान्तःपादमव्यपरे ॥ १६० ॥ ६ । १ । ११५ ॥

यहां से लेके सात सूत्रों का विषय वेदों ही में समझना जहां पदान्त एङ् से परे वकार यकार न हों तो अकार के परे एङ् प्रकृति करके अर्थात् ज्यों का त्यों बना रहे परन्तु वह पाद के बीच में हो। जैसे आरे अस्मे च शृण्वते, त्रयो अस्य पादाः। उपप्रयन्तो अध्वरम्। शुक्रं दुदुह्रे अह्र्यः। यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः। इत्यादि यहां पाद के बीच में इस लिये कहा है कि। द्विषतो बधोऽसि। रक्षसां भागोऽसि। इत्यादि में एङ् प्रकृति करके न रहे। वकार यकार परे न हों यह इस लिये है कि तेऽवदन्। तेऽयुः। इत्यादि में भी प्रकृतिभाव न हो ॥ १६० ॥

२३३ अव्यादवद्यादवक्रमुरव्रतायमवन्त्ववस्युषु च ॥ १६१ ॥ ६ । १ । ११६ ॥

पदान्त एङ् से अव्यात्, अवद्यात्, अवक्रमुः, अव्रत, अयम्, अवन्तु, अवस्यु, इन उत्तरपदों में वकार यकार पर भी अकार परे हो तो पदान्त-एङ् प्रकृति करके रह जावे जैसे। वसुभिर्नो अव्यात्। मित्रमहो अवद्यात्। मा शिवासो अवक्रमुः। तेनो अव्रतः। शतधारो अयं मणिः। तेनो अवन्तु पितरः। शिवासो अवस्यवः। इत्यादि ॥ १६१ ॥

२३४ यजुष्युरः ॥ १६२ ॥ ६ । १ । ११७ ॥

यजुर्वेद में अकार के परे उरः शब्द का उरो पदान्त एङ् होता है वह प्रकृति करके रहे जैसे। उरो अन्तरिक्षम्। इत्यादि ॥ १६२ ॥

२३५ आपो जुषाणो वृष्णो वर्षिष्ठे अम्बे अम्बाले [...] १३० ॥ पूर्वे ॥ १६३ ॥ ६ । १ । ११८ ॥

यजुर्वेद में आपो, जुषाणो, वृष्णो, वर्षिष्ठे, ये ए[...] में अप्लुतवत् के पूर्व हों तो प्रकृति करके रहें और अम्बिके शब्द [...]। चिनुही ३ इदम्

हों तो ये दो शब्द इसी प्रकार रहें जैसे। आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु। जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा। वृष्णो अंशुभ्यां गभस्तिभिः। वर्षिष्ठे अधि नाके। अम्बे अम्बाले अम्बिके ॥ १६३ ॥

२३६ अङ्ग इत्यादौ च ॥ १६४ ॥ ६ । १ । ११९ ॥

जो यजुर्वेद में अकार परे हो तो अङ्ग एङन्त शब्द प्रकृति करके रह जावे और जो अङ्ग इस के परे आदि एङ् है सो भी प्रकृति करके रहता है जैसे। ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे अदीध्यत्। ऐन्द्रः प्राणो अङ्गे अङ्गे निदीध्यत्। इत्यादि ॥ १६४ ॥

२३७ अनुदात्ते च कुधपरे ॥ १६५ ॥ अ० ६ । १ । १२० ॥

यजुर्वेद में जिस अनुदात्त अकार से परे कवर्ग और धकार हों उस के परे पदान्त एङ् प्रकृति करके रह जावे जैसे। अयं सो अग्निः। अयं सो अध्वरः। इत्यादि ॥ १६५ ॥

२३८ अवपथासि च ॥ १६६ ॥ ६ । १ । १२१ ॥

अवपथास् इस अनुदात्त क्रिया के परे पदान्त जो एङ् है वह प्रकृति करके रहे यजुर्वेद में जैसे। त्रिरुद्रो अवपथाः। इत्यादि ॥ १६६ ॥

२३९ सर्वत्र विभाषा गोः ॥ १६७ ॥ ६ । १ । १२२ ॥

सर्वत्र अर्थात् लोक और वेद में गो शब्द से परे ह्रस्व अकार रहे तो गो शब्द का एङ् अर्थात् ओकार विकल्प करके प्रकृति अर्थात् ज्यों का त्यों बना रहे और पक्ष में सन्धि भी हो जाय। गो अग्रम्। गोऽग्रम्। गो अङ्गानि। गोऽङ्गानि। ऐसे दो २ रूप होते हैं ॥ १६७ ॥

२३१ एङ ... पवङ् स्फोटायनस्य ॥ १६८ ॥ ६ । १ । १२३ ॥

जो पदान्त ... आचार्य के मत में अचमात्र के परे गो शब्द के ओंकार के पूर्वरूप एकादेश होता ...ादेश हो ही जाता है। यहां पूर्वसूत्र से गो शब्द की

अनुवृत्ति आती है जैसे । गो—अश्वम् । गवाश्वम् । यहां तो आदेश हुआ परन्तु जहां अन्य आचार्यों के मत में अवङ् आदेश नहीं होता वहां पूर्वरूप और प्रकृतिभाव होने से । गोऽश्वम् । और गो अश्वम् । ये दो रूप भी होते हैं ॥ १६८ ॥

२४१ इन्द्रे च ॥ १६९ ॥ ६ । १ । १२४ ॥

गो शब्द के परे इन्द्र शब्द हो तो नित्य अवङ् आदेश हो जाता है जैसे । गोइन्द्रः । गवेन्द्रः ॥ १६९ ॥

२४२ प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम् ॥ १७० ॥ ६ । १ । १२५ ॥

प्लुत और प्रगृह्यसंज्ञक शब्द अच् प्रत्याहार के परे ज्यों के त्यों बनें रहें । जैसे देवदत्त ३ इहागच्छ । माणवक ३ इहागच्छ । हे ३ इन्द्र । हे ३ अग्ने । इत्यादि प्लुत के उदाहरण हैं जहां २ प्लुत संज्ञा होती है वहां २ उन को परस्पर सन्धि कदापि नहीं होती, यहां तीन का अङ्क सर्वत्र प्लुत का चिन्ह है । प्रगृह्यसंज्ञा के उदाहरण क्रम से ये हैं ईकारान्त द्विवचन । अग्नी इमौ । अग्नी अत्र । ऊकारान्त द्विवचन । वायू इह । वायू अत्र । एकारान्त द्विवचन । माले इमे । खट्वे इमे । कन्ये आसाते । अदस् शब्द के ईकार ऊकार के । अमी आसाते । अमू आसाते । इत्यादि ॥ १७० ॥

२४३ आङोऽनुनासिकश्छन्दसि बहुलम् ॥ १७१ ॥ ६ । १ । १२६ ॥

वेद में आङ्उपसर्ग को अनुनासिक आदेश और प्रकृ[illegible] होता है जैसे । अभ्रयाँ अपः । गभीर आँ उग्रपुत्रः । इत्या[illegible] १३० ॥ कहने से कहीं नहीं भी होता जैसे । इन्द्रोबाहुभ्यामातत में अप्लुतवत् रत । यहां न तो अनुनासिक और न प्रकृतिभाव [illegible]ा । चिनुही ३ इदम्

२४४ इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ॥ १।७२॥६।१।१७२॥

शाकल्य आचार्य्य के मत में इक्प्रत्याहार से परे असवर्ण अच् हो तो उस इक् को प्रकृतिभाव और ह्रस्व आदेश हो । इ—अ । इ—आ । ई—अ । ई—आ । उ—अ । ऊ—आ । उ—आ । ऋ—आ । ॠ—आ । इ—उ । उ—इ । ऋ—इ । ऋ—उ । इ—ए । इ—ओ । इ—औ । इत्यादि क्रम से दो २ प्रयोग बनें । अन्य आचार्यों के मत में जो सन्धि पाता है वह हो जावे गा । सन्धि अत्र । सन्ध्यत्र । अग्नि आधानम् अग्न्याधानम् । कुमारिअत्र । कुमार्य्यत्र । भूमि उद्धृता—भूम्युद्धृता । कुमारि ऊतिः—कुमार्य्यूतिः । कुमारि ऋच्छति । कुमार्य्ृच्छति । कुमारि एति कुमार्य्येति । कुमारि ओषति । कुमार्य्योषति । कुमारि ऐहत । कुमार्य्यैहत । कुमारि औहत । कुमार्य्यौहत । बधु आगमनम्—बध्वागमनम् । बधु इन्दति । बध्विन्दति । बधु ईहते । बध्वीहते । बधु ऋच्छति । बध्वृच्छति । बधु एति । बध्वेति । बधु ओखति । बध्वोखति । बधु ऐधिष्ट । बध्वैधिष्ट । बधु और्दिष्ट—बध्वौर्दिष्ट । पितृ अयनम् । पित्रयनम् । पितृआदरः । पित्रादरः । पितृ इच्छुः । पित्रिच्छुः । पितृ ईहा । पित्रीहा । होतृ उखा । होत्रुखा । पितृ ऊहः । पित्रूहः । इत्यादि असंख्य प्रयोग बनते हैं । यहां असवर्ण ग्रहण इस लिये है कि कुमारी—ईहते । कुमारीहते इस के दो प्रयोग न हों । किन्तु नित्य हो । दीर्घ एकादेश हो जावे । और शाकल्य ग्रहण आदरार्थ है ॥ १७२ ॥

[illegible]०—सिन्नित्यसमासयोः शाकलप्रतिषेधः ॥ १७३ ॥

२३१ ए[illegible] [illegible]त्यय के परे और नित्यसमास में शाकल अर्थात् इस (इको- जो पदान्त [illegible] का कार्य्य न हो । ऋत् इयः । यहां इयः यह सित् पूर्वरूप एकादेश होता [illegible] प्रकृतिभाव नहीं होता । ऋत्वियः । यह एक ही

प्रयोग होता है। नित्यसमास। वि—आकरणम्। व्याकरणम्। कुमारी—अर्थः। कुमार्य्यर्थः। यहां प्रकृतिभाव और ह्रस्व नहीं होता ॥१७३॥

२४६ वा०—ईषाअक्षादिषु च छन्दसि प्रकृतिभावमात्रम् ॥१७४॥

जहां २ वैदिक प्रयोगों में प्रकृतिभाव उक्त सूत्र के विषयों से पृथक् आवे वहां २ ईषा अक्षा आदि शब्दों के समान समझना जैसे। ईषा अक्षाः का ईमिरे पिशंगिला आगमन इत्यादि ॥ १७४ ॥

२४७ ऋत्यकः ॥ १७५ ॥ ६ । १ । १२८ ॥

जो अक् प्रत्याहार से परे ह्रस्व ऋकार हो तो वह शाकल्य ऋषि के मत में प्रकृतिभाव और ह्रस्व होता और अन्य आचार्य्यों के मत में नहीं होता है। खट्वा ऋश्यः। खट्व ऋश्यः। माला ऋश्यः। माल ऋश्यः। यहां ह्रस्व और प्रकृतिभाव हुआ और। खट्वर्श्यः। मालर्श्यः यहां न हुआ। इत्यादि प्रयोग बनते हैं। यहां अक् ग्रहण इस लिये है कि। कुमारावृषी। यहां सन्धि हो जाय ॥ १७५ ॥

२४८ अप्लुतवदुपस्थिते ॥ १७६ ॥ ६ । १ । १२९ ॥

जो प्लुत से परे उपस्थित अर्थात् अनार्ष इति शब्द हो तो प्लुत को अप्लुतवत् कार्य्य हो अर्थात् प्लुत को प्रकृतिभाव न हो जैसे। सुभद्रा ३ इति। सुभद्रेति। सुमङ्गला ३ इति। सुमङ्गलेति। सुश्लोका ३ इति। सुश्लोकेति। जिन शब्दों की प्रगृह्यसंज्ञा होती है उन में से किसी २ की प्लुतसंज्ञा भी होती है। जैसे। अग्नी ३ इति। इत्यादि यहां प्लुत को अप्लुतवत् नहीं हुआ क्योंकि प्रगृह्यसंज्ञा को मान के प्रकृतिभाव हो जाता है ॥ १७६ ॥

२४९ ई ३ चाक्रवर्म्मणस्य ॥ १७७ ॥ ६ । १ । १३० ॥

जो प्लुत ईकार है वह चाक्रवर्म्मण आचार्य्य के मत में अप्लुतवत् होता है अर्थात् उस को प्लुत का कार्य्य नहीं होता। चिनुही ३ इदम्

चिनुहीदम् । सुनुही ३ इदम् सुनुहीदम् । इत्यादि यहां भी पूर्व सूत्र से प्रकृतिभाव हो जाता परन्तु यह सूत्र उपस्थित से अन्यत्र ही अप्लुतवत् करता है ॥ १७७ ॥

२५० इको यणचि ॥ १७८ ॥ ६ । २ । ७७ ॥

इक् प्रत्याहार अर्थात् इ उ ऋ लृ इन चार वर्णों से परे अच् हो तो इन के स्थान में यण् अर्थात् य् र् ल् व् ये चार वर्ण हो जायं जैसे। वापी अश्वः । वाप्यश्वः । कुमारी अपि । कुमार्य्यपि । यहां बहिरङ्गलक्षण यणादेश को असिद्ध मान कर संयोगान्त लोप नहीं होता । बधू अत्र । बध्वत्र । पितृ अर्थम् । पित्रर्थम् । लृ अनुबन्धः । लनुबन्धः । इत्यादि असंख्य उदाहरण बनते हैं ॥ १७८ ॥

२५१ एचोऽयवायवाः ॥ १७९ ॥ ६ । १ ७८ ॥

एच् अर्थात् ए ओ ऐ औ इन चार वर्णों से परे अच् हो तो इन के स्थान में अय्। अव्। आय्। आव् । ये आदेश होते हैं । जे अः । जयः । माले आ । मालया । माले ओः । मालयोः । इत्यादि । वायो आयाहि । वायवायाहि । लो अः । लवः । ऐ अः । आयः । इत्यादि । लौ अकः । लावकः । इत्यादि ॥ १७९ ॥

२५२ वान्तो यि प्रत्यये ॥ १८० ॥ ६ । १ । ७९ ॥

वान्त अर्थात् जो पूर्वसूत्र से अव् आव् आदेश कहे हैं वे यकारादि प्रत्यय के परे भी हो जावें जैसे । अव् । बाभ्रो—यः । बाभ्रव्यः । आव् । नौयः । नाव्यः । इत्यादि यहां वान्त ग्रहण इस लिये है कि । रैर्याति । यहां न हो । यकारादि ग्रहण इस लिये है कि नौका। यहां न हो । प्रत्यय ग्रहण इस लिये है कि, गो यानम् । यहां अव् आदेश न हो जावे ॥ १८० ॥

२५३ वा०—गोर्यूतौ छन्दस्युपसंख्यानम् १८१ ॥

वैदिक प्रयोगों में गो शब्द से परे यूति हो तो गो शब्द के स्थान में वान्त आदेश हो जाय । आनो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । यहां गो आगे यूतिः इस का गव्यूतिः हुआ है ॥ १८१ ॥

२५४ वा०—अध्वपरिमाणे च ॥ १८२ ॥

मार्ग के परिमाण का अर्थ हो तो यूति शब्द के परे गो। स्थान में वान्त आदेश हो। जैसे । गो यूतिः । गव्यूतिः । देखो जहां गतः । दो कोश को गव्यूति कहते हैं ॥ १८२ ॥ पद की आदि में स्वर

...—अच । वागच । और

२५५ धातोस्तन्निमित्तस्यैव ॥ १८... इत्यादि । यहां जकार हो

जहां यकारादि प्रत्यय को मान ... गुरासाट् इत्यादि हकारान्त शब्दों रादि प्रत्यय के परे अव् आदेश हो आदेश हो जाता है । जैसे प्रष्ठवाट् अवश्य लाव्यम् । अवश्य लाव्यम् षडन्तः । विट्—इह । विडिह । ...—ईहते । विराडीहते । इत्यादि टका- प्रातिपदिक का नियम न हो ... रान्त हो जाते हैं । जो धकारान्त शब्दों ओयते । लायमानिः । यहां य... जाता है । जैसे समिध्—अत्र । समिदत्र ।

२५६ क्षय्यजय्यौ शक्यनम् । इत्यादि । जो तकारान्त शब्दों से

यत् प्रत्यय परे हो तो शब... कार को दकार हो जाता है । जैसे । अय् आदेश निपातन किया है। ...। विद्युत्—इह । विद्युदिह । पका- ...न्त में अजादि उत्तरपद परे हो तो शक्यार्थ इस लिये कहा है कि ... पाप... अप्—अयनम् । अबयनम् । तिप्—

२५७ क्रय्यस्तदर्थे ॥ १८५ ॥ ६ । इत्यादि । भकारान्त । अन-

क्री धातु का अर्थ जो बेचने का है वहां ... । जो इन से भिन्न प्रत्यय परे हो तो क्री धातु के एकार को अय् आदेश ... विशेष विकार है । क्रय्यो गौः । क्रय्यः कम्बलः । तदर्थ इस लिये कहा है ... ति । प्रातर्— यहां द्रव्य वाच्य विक्रेयार्थ में न होवे ॥ १८५ ॥ ॥

२५८ भय्यप्रवय्ये च छन्दसि ॥ १८६ ॥ ६ । १ । ८३ ॥

यत् प्रत्यय परे हो तो वेदविषय में भी और प्रपूर्वक वी धातु के एकार को अय् आदेश निपातन किया है । भय्यम् । प्रवय्या । यहां भय्य शब्द में अपादान में प्रत्यय है और प्रवय्या स्त्रीलिङ्ग में नियत है । वेद में इस लिये कहा है कि भेयत् । प्रवेयम् । यहां न हो ॥१८६॥

तो इन के०— हृदय्यास्याप उपसंख्यानम् ॥ १८७ ॥

वापी अश्वः । में हृद शब्द के एकार को यत् प्रत्यय के परे अय् आदेश

यणादेश को असिद्ध ॥ १८७ ॥

बध्वत्र । पितृ अर्थम् । पित्रथ

असंख्य उदाहरण बनते हैं ॥ ५ स्वरसन्धिः ॥

२५१ एचोऽयवायवाः ॥ १

एच् अर्थात् ए ओ ऐ औ इन

के स्थान में अय्, अव्, आय्, आव् ।

जयः । माले आ । मालया । माले आः

आयाहि । वायवायाहि । लो अः । लवः

लौ अकः । लावकः । इत्यादि ॥ १७६

२५२ वान्तो यि प्रत्यये ॥ १

वान्त अर्थात् जो पूर्वसूत्र से

रादि प्रत्यय के परे भी हो जावें

नौयः । नाव्यः । इत्या

यहां न हो । य

प्रत्यय ग्रहण

जावे ॥ १८० ॥

अथ हल्स्वरसन्धिः ॥

२६० चोः कुः ॥ १८८ ॥ ८ । २ । ३० ॥

पदान्त में वर्तमान चवर्ग के स्थान में कवर्ग आदेश हो जाता है और झल् परे हो तो भी । इस से परे वाच् आदि चकारान्त शब्दों को ककारादेश हो जाता है जैसे वाच् सु—वाच्, वाग् इत्यादि ॥ १८८ ॥

२६१ झलां जशोऽन्ते ॥ १८९ ॥ ८ । २ । ३९ ॥

पदान्त में झलों के स्थान में जश् आदेश हों । देखो जहां चकारान्त शब्दों को ककार होता है उन से उत्तरपद की आदि में स्वर हों तो ककार को गकार हो जाता है जैसे । वाक्—अत्र । वागत्र । और चकार को । अच्—अन्तः । अजन्तः । इत्यादि । यहां जकार हो जाता है । प्रष्ठ वाह् । दित्य वाह् तुरासाह् इत्यादि हकारान्त शब्दों से परे स्वर हों तो इन को जश् आदेश हो जाता है । जैसे प्रष्ठवाट् इह । प्रष्ठवाडिह । षट्—अन्तः । षडन्तः । विट्—इह । विडिह । सम्राट्—अत्र । सम्राडत्र । विराट्—ईहते । विराडीहते । इत्यादि टकारान्त शब्दों के स्थान में डकारान्त हो जाते हैं । जो धकारान्त शब्दों से परे स्वर हो तो दकार हो जाता है । जैसे समिध्—अत्र । समिदत्र । समिध्—आधानम् । समिदाधानम् । इत्यादि । जो तकारान्त शब्दों से परे अजादि उत्तरपद हों तो तकार को दकार हो जाता है । जैसे । विद्युत्—आपतनम् । विद्युदापतनम् । विद्युत्—इह । विद्युदिह । पकारान्त तथा भकारान्त शब्दों के अन्त में अजादि उत्तरपद पर हो तो बकार आदेश हो जाता है जैसे । अप्—अयनम् । अबयनम् । तिप्—अन्तः । तिबन्तः । सुप्—अन्तः सुबन्तः । इत्यादि । भकारान्त । अनुष्टुभ्—एव । अनुष्टुबेव । त्रिष्टुभ्—आदि । त्रिष्टुबादि । जो इन से भिन्न अन्य वर्णान्त पदान्त में शब्द आवें गे तो उन में कुछ विशेष विकार न होगा जैसे झय्—आदि । झयादि । सम्—अवैति । समवैति । प्रातर्—अत्र । प्रातरत्र । पुनर्—इह । पुनरिह । इत्यादि ॥ १८९ ॥

इति हल्स्वरसन्धिः ॥

अथ हल्सन्धिः ॥

अब इस के आगे पदान्त अथवा अपदान्त नकार मकार वा अन्य वर्ण को जिस २ वर्ण के परे जो २ कार्य्य होते हैं उस २ को लिखते हैं॥

२६२ मोऽनुस्वारः ॥ १९० ॥ ॥ ८ । ३ । २३ ॥

जो हल् परे हो तो पदान्त मकार को अनुस्वार होता है । जैसे ग्रामम्याति । ग्रामंयाति । यहां पदान्त की अनुवृत्ति इस लिये है कि । गम्यते । यहां अनुस्वार न हुआ ॥ १९० ॥

२६३ नश्चाऽपदान्तस्य झलि ॥ १९१ ॥ ८ । ३ । २४ ॥

जो झल् प्रत्याहार परे हो तो अपदान्त अर्थात् एक पद में नकार और मकार को अनुस्वार होता है॥ मीमान्—सते । मीमांसते । पुम्—सु । पुंसु । इत्यादि । इस विषय में यह समझना चाहिये कि । य, र, ल, व, श, ष, स, ह, इतने वर्णों के परे अपदान्त नकार मकार को अनुस्वार हो जाता है परन्तु वैदिक प्रयोगों में, श,ष,स,र,ह, इन वर्णों के परे अनुस्वार को ꣳ आदेश होता है क्योंकि । रेफोष्मणां सवर्णा न सन्ति। महा०।१।१।२। इस ज्ञापक से सवर्णादेश का निषेध हो कर असवर्णादेश होता है। इसमें भी जो कुछ विशेष हो वह आगे लिखें गे झल् प्रत्याहार ग्रहण इस लिये है कि । मन्यते यहां न हुआ । और झल् प्रत्याहार में बाकी जो वर्ण बचे हैं उन के परे अपदान्त नकार मकार को अनुस्वार होके जो कुछ विकार होता है वह आगे लिखें गे ॥ १९१ ॥

२६४ मो राजि समः क्वौ ॥ १९२ ॥ ८ । ३ । २५ ॥

क्विप् प्रत्ययान्तराज् धातु परे हो तो सम् उपसर्ग के मकार को मकार ही आदेश हो जैसे। सम्—राट् । सम्राट् । साम्—राज्यम्। साम्रा-

ज्यम् । यहां सम् ग्रहण इस लिये है कि । स्वयंराट् । इत्यादि में नहीं होता । क्विप् प्रत्ययान्त ग्रहण इस लिये है कि । संराजितव्यम् । संराजितुम् । यहां न हुआ ॥ १९२ ॥

२६५ हे मपरे वा ॥ १९३ ॥ ८ । ३ । २६ ॥

जिस से परे मकार हो ऐसे हकार के परे पदान्त मकार को अनुस्वार विकल्प करके होता है । द्वितीय पक्ष में मकार ही बना रहता है । जैसे । किंह्मलयति । किम्ह्मलयति । कथंह्मलयति । कथम्ह्मलयति । इत्यादि यहां मपर हकार का ग्रहण इस लिये है कि । किं हससि । इत्यादि में नहो ॥ १९३ ॥

२६६ वा०—यवलपरे यवला वा ॥ १९४ ॥

जिस से परे य, व, ल, वर्ण हों ऐसा हकार परे हो तो पदान्त मकार को सानुनासिक य, व, ल, विकल्प करके होते हैं। पक्ष में अनुस्वार हो जाता है । (य) किँय्ह्योऽभवत् । किंह्योभवत् (व) किँव्ह्वलयति । किंह्वलयति । (ल) किँल्ह्लादयति । किंल्हादयति । इत्यादि। प्रत्युदाहरण । जैसे । किंहृष्यसि । इत्यादि में न हुआ ॥ १९४ ॥

२६७ नपरे नः ॥ १९५ ॥ ८ । ३ । २७ ॥

जो हकार से परे नकार हो तो मकार को विकल्प करके नकार आदेश होता है । पक्ष में अनुस्वार होगा । जैसे । किन्ह्नुते। किंह्नुते । कथन्ह्नुते । कथंह्नुते । इत्यादि नपर हकार इस लिये कहा है कि । किंहृदयं तेऽस्ति। यहां न हुआ अब पदान्त नकार मकार को अनुस्वार हो के जो २ विशेष होता है सो २ लिखते हैं ॥ १९५ ॥

२६८ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ॥ १९६ ॥ ८ । ४ । ५८॥

जो यय् प्रत्याहार परे हो तो अपदान्त अनुस्वार को पर सवर्ण आदेश होता है । इस से उत्तर सूत्र में पदान्त ग्रहण के ज्ञापक से यह

सूत्र अपदान्त के लिये है। जैसे। अं—कः। अङ्कः। अं—चनम्। अञ्चनम्। वं—टनम्। वण्टनम्। अं—ततः। अन्ततः। चं—डः। चण्डः। कं—पनम्। कम्पनम्। इत्यादि। परसवर्ण अर्थात् जिस वर्ग का अक्षर परे हो उसी वर्ग का अनुनासिक वर्ण अनुस्वार के स्थान में हो जाता है। जैसे कवर्ग के परे पूर्व अनुस्वार के स्थान में ङकार ही होगा इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये ॥ १९६ ॥

२६९ वा पदान्तस्य ॥ १९७ ॥ ८ । ४ । ५९ ॥

यय् प्रत्याहार के परे पदान्त अनुस्वार को पर का सवर्ण आदेश विकल्प करके होता है। जैसे। कटङ्करोति। कटंकरोति। बालञ्चेतयति। बालंचेतयति। ग्रामण्टीकते। ग्रामंटीकते। नदीन्तरति। नदींतरति। प्रजाम्पिपर्त्ति। प्रजांपिपर्ति। सँय्यन्ता। संयन्ता। सँव्वत्सरः। संवत्सरः। यँल्लोकम्। यंलोकम्। इत्यादि ॥ इत्यनुस्वारप्रकरणम् ॥१९७॥

२७० तोर्लि ॥ १९८ ॥ ८ । ४ । ६० ॥

लकार परे हो तो तवर्ग के स्थान नें परसवर्ण हो जावे। जैसे। अग्नि—चित् लुनाति। अग्निचिल्लुनाति। विद्यु त्—लेलायते। विद्यु ल्लेलायते। भवान्—लक्षयति। भवाँल्लक्षयति इत्यादि ॥ १९८ ॥

२७१ ङ्णोः कुक्टुक् शरि ॥ १९९ ॥ ८ । ४ । २८ ॥

शर् प्रत्याहार परे हो तो पदान्त ङकार णकार को विकल्प करके कुक्, टुक् का आगम यथाक्रम से होता है। जैसे उदङ्क्शेते। उदङ्शेते। उदङ्क्षष्ठः। उदङ्षष्ठः। उदङ्क्सुनोति। उदङ्सुनोति प्रवण्ट्शेते। प्रवण्शेते। प्रवण्ट्ष्वष्कते। प्रवण्ष्वष्कते। प्रवण्ट् सरति। प्रवण् सरति। इत्यादि ॥ १९९ ॥

२७२ डः सि धुट् ॥ २०० ॥ ८ । ३ । २९ ॥

जो पदान्त डकार से परे सकारादि उत्तरपद हो तो उस को विकल्प करके धुट् का आगम होता है। जैसे। श्वलिट्त् सीयते। श्वलिट्सीयते। मधुलिट्त्सीयते। मधुलिट्सीयते। इत्यादि ॥ २०० ॥

२७३ नश्च ॥ २०१ ॥ ८ । ३ । ३० ॥

जो पदान्त नकार से परे सकारादि उत्तरपद हो तो उस को धुट् का आगम विकल्प करके होता है। भवान्त्सनोति। भवान् सनोति। इत्यादि ॥ २०१ ॥

२७४ शि तुक् ॥ २०२ ॥ ८ । ३ । ३१ ॥

जो पदान्त नकार से परे शकारादि उत्तरपद हो तो उस को विकल्प करके तुक् का आगम होता है। जैसे। भवाञ्च्छेते। भवाञ्छेते। इत्यादि ॥ २०२ ॥

२७५ ङमो ह्रस्वादचि ङमुण्नित्यम् ॥२०३॥ ८ ।३ । ३२॥

ह्रस्व से परे जो पदान्त ङम्प्रत्याहार उस से परे अजादि उत्तरपद को नित्य ही ङमुट् का आगम होता है। अर्थात् ङकार से ङुट् णकार से णुट् नकार से परे नुट् का आगम होता है जैसे। तिङ्—अतिङः। तिङ्ङतिङः। उदङ्ङास्ते। प्रवण्णास्ते प्रवण्णवोचत्। कुर्वन्नास्ते। तस्मिन्—इति तस्मिन्निति। इत्यादि ॥ २०३ ॥

२७६ मय उञो वो वा ॥ २०४ ॥ ८ । ३ । ३३ ॥

जो मय् प्रत्याहार से परे उञ् अव्यय उस को अजादि उत्तरपद परे हो तो विकल्प करके वकार आदेश होता है। जैसे। शम्—उ—अस्तु। शम्वस्तु। तद्—उ—अस्य। तद्वस्य। किम्—उ—आवपनम्।

क्रिम्वावदनम् । इत्यादि । अब इस के आगे तुक् का आगम लिखते हैं ॥ २०४ ॥

२७७ ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ॥ २०५ ॥ ६ । १ । ७१ ॥

पूर्व ह्रस्व को तुक् का आगम होता है जो पित् कृत् परे हो तो। पुण्यकृत् । अग्निचित् इत्यादि ॥ २०५ ॥

२७८ संहितायाम् ॥ २०६ ॥ ६ । १ । ७२ ॥

यह अधिकार सूत्र है इस के आगे जो २ कहेंगे सो २ संहिता विषय में समझना ॥ २०६ ॥

२७९ छे च ॥ २०७ ॥ ६ । १ । ७३ ॥

जो ह्रस्व से परे छकारादि उत्तरपद हो तो पदान्त और अपदान्त में भी उस को तुक् का आगम होता है । जैसे । इ—छति । इच्छति । गच्छति । स्वच्छन्दः । देवदत्तच्छत्रम् । इत्यादि ॥ २०७ ॥

२८० आङ्माङोश्च ॥ २०८ ॥ ६ । १ । ७४ ॥

जो आङ् और माङ् से परे छकार हो तो उस को तुक् का आगम होता है (ईषदर्थ । क्रियायोग । मर्य्यादा । अभिविधि) इन अर्थों में आकार ङित् आता है। ईषदर्थ। आछाया आच्छाया । क्रियायोग-आ—छादनम् । आच्छादनम् । मर्य्यादा । आ—छायायाः । आच्छायायाः । अभिविधि । आच्छायम् माम् । मा—छैत्सीत् । माच्छैत्सीत् । माच्छिदत् इत्यादि ॥ २०८ ॥

२८१ दीर्घाच्च ॥ २०९ ॥ ६ । १ । ७५ ॥

जो अपदान्त अर्थात् एक पद में दीर्घ से परे छकार हो तो उस को तुक् का आगम होता है । जैसे । ह्री—छति । ह्रीच्छति । म्लेच्छति । इत्यादि ॥ २०९ ॥

२८२ पदान्ताद्वा ॥ २१० ॥ ६ । १ । ७६ ॥

जो पदान्त दीर्घ से परे छकारादि उत्तरपद हो तो उस को तुक् का आगम विकल्प करके होता है। जैसे। गायत्री—छन्दः। गायत्रीच्छन्दः। इत्यादि ॥ २१० ॥

२८३ वा०—विश्वजनादीनां छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ २११ ॥

विश्व जन आदि शब्दों से परे छकार को विकल्प करके तुक् का आगम होता है। पूर्व (छेच) इस सूत्र से ह्रस्व से परे नित्य तुक् प्राप्त था उस का विकल्प यह समझना चाहिये। जैसे। विश्वजन—छत्रम्। विश्वजनच्छत्रम्। तुक् प्रकरण पूरा हुआ ॥ २११ ॥

२८४ स्तोः श्चुना श्चुः ॥ २१२ ॥ ८ । ४ । ४० ॥

सकार और तवर्ग को शकार और चवर्ग के साथ क्रम से शकार और चवर्ग होते हैं। जैसे। विष्णुमित्रस् शोभते। विष्णुमित्रश्शोभते ॥२१२॥

२८५ ष्टुना ष्टुः ॥ २१३ ॥ ८ । ४ । ४१ ॥

सकार और तवर्ग को षकार और टवर्ग के साथ षकार और टवर्ग होते हैं। जैसे। पुरुषस्—षष्ठः। पुरुषष्षष्ठः। इत्यादि। पुरुषस्टीकते। पुरुषष्टीकते। इत्यादि। टवर्ग का सकार के साथ। शूद्रस्—टलति। शूद्रष्टलति। इत्यादि। तवर्ग का टवर्ग के साथ। योषित्—टलति। योषिट्टलति। इत्यादि ॥ २१३ ॥

२८६ न पदान्ताट्टोरनाम् ॥ २१४ ॥ ८ । ४ । ४२ ॥

अनाम् अर्थात् षष्ठी के बहुवचन को छोड़ के पदान्त टवर्ग से उत्तर सकार और तवर्ग को षकार और टवर्ग आदेश न हों। जैसे। षट्-सन्ति। मधुलिट्सरति। इत्यादि जो सूत्रकार ने आम् अर्थात् षष्ठी के बहुवचन को छोड़ के ष्टुत्व का निषेध किया है उसी में वार्त्तिककार कहते हैं कि ॥ २१४ ॥

२८७ वा०—अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम् ॥ २१५ ॥

नाम् के निषेध के साथ नवति और नगरी शब्द का भी निषेध कहना चाहिये। जैसे। षण्—नाम्। षण्णाम्। षट्—नवतिः। षण्णवतिः। षट्—नगर्य्यः। षण्णगर्य्यः। इत्यादि। सूत्र में पदान्तग्रहण इस लिये है कि। ईड्—ते। ईट्टे। यहां टवर्ग आदेश का निषेध न हुआ। टवर्ग से परे इस लिये है कि। निष्—तप्तम्। निष्टप्तम्। सर्पिष्—तमम्। सर्पिष्टमम्। यहां टुत्व हो ही गया ॥ २१५ ॥

२८८ तोष्षि ॥ २१६ ॥ ८। ४। ४३ ॥

षकार के योग में तवर्ग को टवर्ग आदेश न हो जैसे। योषित्—षण्ढः। योषित्षण्ढः। इत्यादि ॥ २१६ ॥

२८९ शात् ॥ २१७ ॥ ८। ४। ४४ ॥

शकार से परे तवर्ग को चवर्ग आदेश न हो। जैसे। विश्नः। प्रश्नः। यहां ञकार न हुआ ॥ २१७ ॥

२९० यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ॥ २१८ ॥ ८। ४। ४५ ॥

जो अनुनासिकादि उत्तरपद परे हो तो पदान्त यर् को अनुनासिक आदेश विकल्प करके होता है। जैसे। वाक्—नमति वाङ्नमति। वाग्नमति। जिस पक्ष में अनुनासिक नहीं हुआ वहां पदान्त में जश् आदेश होता है। त्रिष्टुभ्—नाम। त्रिष्टुम्नाम। त्रिष्टुब्नाम। यहां पदान्त ग्रहण इस लिये है कि। दभ्नोति। क्षुभ्नाति। रुक्मम्। इत्यादि। उदाहरणों में नहीं होता ॥ २१८ ॥

२९१ वा०—यरोऽनुनासिके प्रत्यये भाषायां नित्यं वचनम् ॥ २१९ ॥

अनुनासिकादि प्रत्यय परे हों तो यर् को अनुनासिक नित्य ही होता है, भाषा, अर्थात् लौकिक प्रयोग विषय में। जैसे। प्राङ्मयम्।

चिन्मयम् । इत्यादि । यहां भाषाग्रहण इस लिये है कि वेद में पूर्व-वत् दो ही प्रयोग हों । जैसे । वाङ् मयम् । वाग्मयम् । इत्यादि ॥२१९॥

२९२ अचो रहाभ्यां द्वे ॥ २२० ॥ ८ । ४ । ४६ ॥

अपदान्त में अच् से उत्तर जो रेफ हकार और उन से उत्तर यर् हों तो उन को विकल्प करके द्वित्व होता है । जैसे । कार्—यम् । कार्य्यम् । कार्यम् । हर्य्यनुभवः हर्यनुभवः । ब्रह्म्म । ब्रह्म । अपह्नुतिः । अपह्नुतिः ॥ इत्यादि । यहां अच् से परे इस लिये कहा है कि । रातिर्ह्लयति । इत्यादि यहां द्विर्वचन न हुआ ॥ २२० ॥

२९३ अनचि च ॥ २२१ ॥ ८ । ४ । ४७ ॥

जो अच् से परे और हल् के पूर्व यर् प्रत्याहार हो तो उस को विकल्प करके द्वित्व होता है । जैसे । दधि—अत्र । दध्य्अत्र । दद्ध्यत्र । दध्यत्र इत्यादि यहां द्वित्व हो कर (३०५) सूत्र से पूर्व धकार को दकार हो गया । अच् ग्रहण इस लिये है कि । स्मितम् । स्तुतम् । इत्यादि में न हो ॥ २२१ ॥

२९४ वा०—द्विर्वचने यणो मयः ॥ २२२ ॥

इस वार्त्तिक के दो अर्थ हैं । एक तो यण् से परे मय् को द्वित्व होता है और दूसरा मय् से परे यण् को द्वित्व हो । जहां यण् से परे मय् को द्वित्व होता है वहां । उल्क्का । वल्म्मीकम् । इत्यादि उदाहरण बनते हैं । और जहां मय् से परे यण् को द्वित्व होता है वहां । दध्य्यत्र । मध्व्वत्र । इत्यादि उदाहरण बनते हैं ॥ २२२ ॥

२९५ वा०—शरः खयः ॥ २२३ ॥

इस वार्त्तिक में भी दो मत हैं । एक तो शर् से परे खय् को द्विर्वचन होता है और दूसरा खय् से परे शर् को द्विर्वचन हो । जैसे स्त्थाली । स्त्थाता । स्फ्फोटः । स्त्तोतः । स्च्च्योतति । और संवत्स्सरः । क्ष्षीरम् । अप्स्सराः । इत्यादि ॥ २२३ ॥

२९६ वा०—अवसाने च ॥ २२४ ॥

जो अवसान में यर् हैं उन को विकल्प करके द्विर्वचन होता है। जैसे। वाक्क्। वाक्। इत्यादि ॥ २२४ ॥

२९७ नादिन्याक्रोशे पुत्रस्य ॥ २२५ ॥ ८। ४। ४८ ॥

जो आक्रोश अर्थ में आदिनी शब्द परे हो तो पुत्र शब्द के तकार को द्विर्वचन न हो। यह (अनचि च) इस सूत्र का अपवाद है। जैसे। पुत्र—आदिनी। पुत्रादिनी। आक्रोशग्रहण इस लिये है कि पुत्त्रादिनी सर्प्पिणी। यहां हो गया ॥ २२५ ॥

२९८ वा०—तत् परेच ॥ २२६ ॥

पुत्र शब्द से परे पुत्र शब्द हो तो भी उस को द्विर्वचन न हो। जैसे। पुत्रपुत्रादिनी ॥ २२६ ॥

२९९ वा०—वा हतजग्धयोः ॥ २२७ ॥

जो पुत्र शब्द से परे हत और जग्ध शब्द हों तो उस को विकल्प करके द्विर्वचन होता है। जैसे। पुत्त्रहती। पुत्रहती। पुत्त्रजग्धी। पुत्रजग्धी इत्यादि ॥ २२७ ॥

३०० वा—०चयो द्वितीयाः शरि पौष्करसादेः ॥ २२८ ॥

जो शर् प्रत्याहार के परे चय् प्रत्याहार हो तो उसके स्थान में वर्गों के द्वितीय वर्ण आदेश हो जाते हैं। यह पौष्करसादि आचार्य्य का मत है। क्शाता। ख्शाता। वत्सरः। वथ्सरः। अप्सराः। अफ्सराः। इत्यादि ॥ २२८ ॥

३०१ शरोऽचि ॥ २२९ ॥ ८। ४। ४९ ॥

जो अच् परे हो तो शर् प्रत्याहार को द्विर्वचन न हो। दर्शनम्। कर्षति। इत्यादि। यहां अच्ग्रहण इस लिये है कि। दश्शर्य्यते। इत्यादि में निषेध न हो ॥ २२९ ॥

३०२ त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य ॥ २३० ॥ ८ । ४ । ५० ॥

जहां तीन आदि वर्ण इकट्ठे हों वहां शाकटायन आचार्य्य के मत से द्विर्वचन न हो । जैसे इन्द्रः । चन्द्रः । उष्ट्रः । राष्ट्रम् इत्यादि ॥२३०॥

३०३ सर्वत्र शाकल्यस्य ॥ २३१ ॥ ८ । ४ । ५१ ॥

जहां २ द्विर्वचन कह आये हैं वहां २ शाकल्य आचार्य्य के मत से न होना चाहिये । जैसे । अर्कः । ब्रह्मा । दध्यत्र मध्वत्र । इत्यादि ॥ २३१ ॥

३०४ दीर्घादाचार्य्याणाम् ॥ २३२ ॥ ८ । ४ । ५२ ॥

सब आचार्य्यों के मत से दीर्घ से परे यर् को द्विर्वचन न होना चाहिये । जैसे । दात्रम् । पात्रम् । स्तोत्रम् । इत्यादि ॥ २३२ ॥

३०५ झलाञ्जश्झशि ॥ २३३ ॥ ८ । ४ । ५३ ॥

जो झश् प्रत्याहार परे हों तो झलों के स्थान में जश् आदेश होता है । जैसे । लभ्—धा । लब्धा । दोघ्—धा । दोग्धा । दद्ध्यत्र ।इत्यादि। यहां झश् ग्रहण इस लिये है कि । दत्तः । आत्थ। इत्यादिकों में न हो ॥२३३॥

३०६ खरि च ॥ २३४ ॥ ८ । ४ । ५५ ॥

जो खर् प्रत्याहार परे हो तो झलों को चर् आदेश हों । जैसे ।भिद्—ता । भेत्ता।लिभ्—सा ।लिप्सा । युयुध्—सते । युयुत्सते । इत्यादि ॥२३४॥

३०७ उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य ॥ २३५ ॥ ८ । ४ । ६१ ॥

उद् से परे स्था और स्तम्भ धातु के सकार के स्थान में पूर्व का सवर्ण आदेश होता है । जैसे । उद्--स्थानम् । यहां एक थकार को पूर्व सूत्र से तकार हो जाता है । उत्थाता । उत्थातुम् । उत्थातव्यम् । उद्—स्तम्भनम् । उत्तम्भनम् । उत्तम्भिता । उत्तम्भितुम् । उत्तम्भितव्यम् । इत्यादि । स्था स्तम्भ का ग्रहण इस लिये है कि । उद्—स्कभ्नोति । उत्स्कभ्नोति । इत्यादि में न हुआ ॥ २३५ ॥

३०८ वा०—उदः पूर्वत्वे स्कन्देश्छन्दस्युपसंख्यानम् ॥ २३६ ॥

वैदिक प्रयोगों में उद् उपसर्ग से परे स्कन्द धातु को पूर्व सवर्ण आदेश हो। जैसे। अग्न्येदूरमुत्कन्दः। यहां। उद्—स्कन्दः। सकार को पूर्वसवर्ण तकार हो कर। उत्कन्दः। ऐसा होता है ॥ २३६ ॥

३०९ वा०—रोगे चेति वक्तव्यम् ॥ २३७ ॥

रोग अर्थ में भी स्कन्द को पूर्वसवर्ण आदेश हो जावे। जैसे। उत्कन्दो रोगः ॥ २३७ ॥

३१० झयो होऽन्यतरस्याम् ॥ २३८ ॥ ८ । ४ । ६२ ॥

झय् प्रत्याहार से परे हकार को पूर्वसवर्ण आदेश विकल्प करके होता है। जैसे कवर्ग से परे हो तो घकार। वाग्—हसति। वाग्घसति। टवर्ग से परे हो तो ढकार। लघड्—हन्ता। लघड्ढन्ता। तवर्ग से परे हो तो धकार। अग्निचित्—हसति। अग्निचिद्धसति। पवर्ग से परे हो तो भकार होता है। त्रिष्टुब्—हसति। त्रिष्टुब्भसति। इत्यादि। यहां झय् ग्रहण इस लिये है कि। भवान् हसति। इत्यादि में न हो ॥२३८॥

३११ शश्छोऽटि ॥ २३९ ॥ ८ । ४ । ६३ ॥

जो झय् से परे और अट् प्रत्याहार के पूर्व शकार हो तो उस को छकार आदेश विकल्प करके होता है। जैसे। वाक् छेते। वाक् शेते। मधुलिट् छेते। मधुलिट् शेते। त्रिष्टुप् छेते। त्रिष्टुप् शेते। इत्यादि ॥२३९॥

३१२ वा०—छत्वममीति वक्तव्यम् ॥ २४० ॥

जो अम् प्रत्याहार परे हो तो भी झय् से परे शकार को छकार आदेश होता है। जैसे। तत्—श्लोकेन। तच्छ्लोकेन। तत्—श्मश्रु। तच्छ्मश्रु। इत्यादि ॥ २४० ॥

३१३ हलो यमां यमि लोपः ॥ २४१ ॥ ८ । ४ । ६४ ॥

हल् से परे यम् का लोप विकल्प करके होता है। जो यम् परे हो तो जैसे। शय्य्या। यहां तीन यकार हैं इन में से मध्यस्थ यकार का लोप होकर। शय्या। दध्य्यत्र। यहां भी वैकल्पिक लोप होकर। दद्ध्यत्र। इत्यादि। हल् ग्रहण इस लिये है कि। वित्तम्। यहां न हुआ। यम् का लोप इस लिये कहा है कि। अग्निः। यहां लोप न हुआ। और यम परे इस लिये है कि। शार्ङ्गम्। यहां न हुआ ॥२४१॥

३१४ झरो झरि सवर्णे ॥ २४२ ॥ ८ । ४ । ६५ ॥

जो सवर्ण झर् परे हो तो हल् से परे झल् का लोप विकल्प करके होता है। जैसे। प्रत्त्तम्। अवत्त्तम्। यहां चार तकार होते हैं। तीन तो प्रथमही हैं। और एक पीछे द्विर्वचन होने से हो जाता है उन में से एक वा दो का लोप होकर। प्रत्तम्। प्रत्तम्। अवत्तम्। अवत्तम्। उत्थ्थानम्। यहां भी एक तकार का लोप विकल्प करके हो जाता है। उत्थानम्। इत्यादि ॥ २४२ ॥

इति हल्सन्धिः ॥

अथ अयोगवाहसन्धिः ॥

—:०*०:—

अब इस के आगे अयोगवाह सन्धि का प्रकरण लिखा जाता है ॥

३१५ स सजुषो रुः ॥ २४३ ॥ ८ । २ । ६६ ॥

जो पदान्त सकार और सजुष् शब्द का मूर्द्धन्य षकार है उस को रु आदेश होता है। पदान्त दो प्रकार का होता है एक तो अवसान में अर्थात् जिस से आगे कोई पद वा अक्षर न हो और दूसरा उत्तरपद के पर भी पदान्त कहाता है। इस में से अवसान में सकार को रु होता है उस का विषय नामिक पुस्तक में आवेगा। और यह अयोगवाह प्रकरण है यहां शब्दों की मिलावट दिखलाई जाती है। यह रु आदेश सब दन्त्य सकारान्त शब्दों को होता है इसी लिये सजुष् शब्द के मूर्द्धन्य षकार को रु विधान किया है। पदान्त सकार भी दो प्रकार का होता है एक स्वरान्त शब्दों से विभक्ति का सकार और दूसरा जो प्रथम से ही सकारान्त होते हैं विभक्ति से सकारान्त जैसे पुरुष सु। इत्यादि। प्रथम से सकारान्त। जैसे मनस्, पयस्, धनुष्। हविष्। इत्यादि अब इस पदान्त सकार को रु आदेश हो कर पीछे क्या २ कार्य होता है सो क्रम से लिखते हैं ॥ २४३ ॥

३१६ एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि ॥
॥ २४४ । ६ । १ । १३२ ॥

ककार और नञ् समास को छोड़ कर हल् प्रत्याहार परे हो तो एतत् और तत् शब्द के सु का लोप हो जैसे। स पठति। एष गच्छति। इत्यादि यहां ककार का निषेध इस लिये है कि। एषको गच्छति।

सक्तो ब्रूते यहां न हुआ। नञ् समास में निषेध इस लिये है कि अनेषो ददाति। असो याति इत्यादि में न हो। हल् ग्रहण इस लिये है कि एषस्—अत्र। एषोऽत्र। सस्—अत्र। सोऽत्र। यहां "सु" का लोप न हो॥२४४॥

३१७ स्यश्छन्दसि बहुलम् ॥ २४५ ॥ ६ । १ । १३३ ॥

वैदिक प्रयोगों में हल् प्रत्याहार परे हो तो त्यद् शब्द के सु का लोप बहुल करके हो जैसे। स्य ते द्युमां इन्द्रसोमः। बहुलग्रहण से यहां—नहीं भी होता। यत्र स्यो निपतेत्। यहां छन्दसि इस लिये कहा है कि लोक में न हो। स्यो हसति। स्यो धावति। इत्यादि ॥ २४५ ॥

३१८ सोऽचि लोपे चेत्पादपूरणम् ॥ २४६ ॥ ६ । १ । १३४ ॥

जो अजादि उत्तरपद परे हो तो तद् शब्द के पदान्त सकार का लोप होता है परन्तु लोप होने से छन्दों के पाद की पूर्त्ति होती हो तो। जैसे। सेमन्नो अध्वरं यज। यहां जब। सस्—इमम्। पद के परे लोप नहीं पाया था सो लोप होकर गुण एकादेश होगया तब "सेमम्" ऐसा हुआ जो न होता तो नव अक्षरों के होने से पाद भी पूर्ण नहीं होता। लोक में। सैषशूद्रो महाबली। यहां भी, "सस्। एषस्" इस अवस्था में विभक्ति के सकार का लोप हो कर वृद्धि एकादेश हो जाता है। यहां पादपूरण इस लिये है कि "सइव व्याघ्रोभवेत्"। अब इन दो सूत्रों से जहां सकार का लोप नहीं होता वहां स्वरादि उत्तरपदों के परे रु को क्या २ होता है सो क्रम से लिखते हैं॥ २४६ ॥

३१९ अतो रोरप्लुतादप्लुते ॥ २४७ ॥ ६ । १ । ११३ ॥

जो अप्लुत ह्रस्व अकार से अप्लुत अकार परे हो तो रु के स्थान में उकार आदेश होता है। जैसे। पुरुषर्—अत्र। पुरुषोऽत्र। मनर्—अर्घ्य।

मनोऽर्पय। इत्यादि अप्लुत से परे इस लिये है कि। सुस्रोता३अत्र त्वमसि। यहां उत्वादेश न हो। अप्लुत परे हो इस लिये है कि। तिष्ठतु पय आ३ग्निदत्त। यहां न हो। अब जहां अवर्णान्त वा अन्य स्वरान्त शब्दों से परे (रु) हो और उत्तरपद में तो क्या होना चाहिये इस विषय में लिखते हैं ॥ २४७ ॥

३२० भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ॥ २४८ ॥ ८ । ३ । १७ ॥

जो भोस्, भगोस्, अघोस्, और अवर्ण से परे अश् प्रत्याहार हो तो, रु, के स्थान में (य्) आदेश होजाता है जैसे। भोय्—अत्र। भोअत्र। भगोय्—इह। भगोइह। अघोय्—उत्तिष्ठ। अघोउत्तिष्ठ। अकार से परे आकार के पूर्व। पुरुषय्—आगच्छति। पुरुष आगच्छति। आकार से परे अकार के पूर्व। ब्राह्मणाय्—अविदुः। ब्राह्मणा अविदुः। अब जो रु के स्थान में (य्) आदेश हुआ है इस का क्या होना चाहिये सो लिखते हैं॥२४८॥

३२१ व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य ॥ २४९ ॥ ८।३।१८॥

जो अवर्ण से परे यकार वकार है उस को लघु प्रयत्नतर आदेश हो शाकटायन आचार्य्य के मत में। जिन के उच्चारण में बहुत थोड़ा बल पड़े वह लघुप्रयत्नतर कहाता है (एचोऽयवायावः) इस उक्त सूत्र से पदान्त में जो अय् आदि आदेश होते हैं वे तथा जो पूर्व सूत्र से रु के स्थान में यकारादेश होता है उन सब यकार वकारों का यहां ग्रहण है। पुरुषयागच्छति। पुरुषयिह। ब्राह्मणायदुहुः। इत्यादि। अय् आदेश। के आसते। कयासते। वायो आयाहि। वायवायाहि। स्त्रियै उद्यतः। स्त्रियायुद्यतः। असौ आदित्यः। असावादित्यः। जो यह लघुप्रयत्नतर आदेश होता है सो उदाहरणों में बहुत कम आता है अब जहां लघु प्रयत्नतर आदेश नहीं होता वहां क्या होता है सो दिखलाते हैं ॥ २४९ ॥

३२२ लोपः शाकल्यस्य ॥ २५० । ८ । ३ । १९ ॥

जो अवर्ण से परे और अश् प्रत्याहार के पूर्व पदान्त यकार वकार हों तो उन का विकल्प करके लोप होता है शाकल्यआचार्य के मत में । जैसे पुरुषय्—आगच्छति । पुरुषआगच्छति । पुरुषयागच्छति । ब्राह्मणाय्—अविदुः । ब्राह्मणा अविदुः । ब्राह्मणायविदुः । कय्—आसते । कआसते । कयासते । गृहय्आसते । गृहआसते । गृहयासते । वायव्आयाहि । वाय आयाहि । वायवायाहि । पादाव्उच्येते । पादाउच्येते । पादावुच्येते । हरय्एहि । हरएहि । हरयेहि । विष्णव्इह । विष्णइह । विष्णविह । इत्यादि ॥ २५० ॥

३२३ ओतो गार्ग्यस्य ॥ २५१ । ८ । ३ । २० ॥

जो अश् प्रत्याहार परे हो तो ओकार से परे रु को य् होता है उस का नित्य ही लोप होवे। और गार्ग्य का ग्रहण पूजार्थ है। भोय्—अत्र । भोअत्र । भगोय्इह । भगोइह । अघोय्इह । अघोइह ॥२५१॥

३२४ उञि च पदे ॥ २५२ । ८ । ३ । २१ ॥

उञ् पद के परे अवर्ण के आगे जो पदान्त यकार वकार हों तो उन का नित्य लोप हो जावे जैसे । सय्उ प्राणस्य प्राणः । सउप्राणस्य प्राणः । कय्उस्विज्जायतेपुनः । कउस्विज्जायतेपुनः । कय्उसन्ति । कउ-सन्ति । वायव्—उवाति । वायउवाति । श्रियाय्उयतते । श्रिया उयतते इत्यादि ॥ २५२ ॥ सजुष् आदि शब्द को (रु) विधान करचुके हैं उस रेफान्त को पदान्त में दीर्घ आदेश हो जाता है । उस से उत्तरपद में जो स्वर होगा तो रेफ उस में मिल जावे गा । और जो हल्वर्ण आवेगा तो उस के ऊपर रेफ चढ़ जावे गा । स्वर में । सजूरत्र । सजूरिह । इत्यादि ।

परन्तु ऋकार के परे रेफ ऊपर ही चढ़ जाता है। सजूर्ऋषिः। वायुर्ऋच्छति। इत्यादि। अग्निर् अत्र। अग्निरत्र। अग्निर् आनीयते। अग्निरानीयते। इत्यादि। जो अशप्रत्याहार में स्वरों से भिन्न वर्ण रहें तो वहां क्या होना चाहिये सो लिखते हैं॥ २५२॥

३२५ हशि च॥ २५३। ६। १। ११४॥

ह्रस्व अकार से परे रु, के रेफ को उकार आदेश होता है जो हशप्रत्याहार परे हो तो। जैसे। पुरुषउ हसति। उकार के साथ गुण एकादेश हो कर। पुरुषोहसति। इत्यादि॥ २५३॥

३२६ हलि सर्वेषाम्॥ २५४। ८। ३। २२॥

हल्प्रत्याहार के परे भो, भगो, अघो, और अवर्ण जिस के पूर्व हो उस यकार का लोप सब आचार्य्यों के मत से हो। भोय्—हसति। भोहसति। भगोय्—हसति। भगोहसति। अघोय्हसति। अघोहसति। अकारान्त से पुरुषाय् हसन्ति। पुरुषाहसन्ति। बालाय्-नन्दन्ति। बालानन्दन्ति। चन्द्रमाय् वर्द्धते। चन्द्रमावर्द्धते। इत्यादि। हसमात्र में इस सूत्र की प्रवृत्ति होती है। यहां हल् ग्रहण उत्तर सूत्रों के लिये है क्योंकि यहां हश् प्रत्याहार से ही प्रयोजन है अब इकार आदि स्वरों से परे रु हो और हशप्रत्याहार उत्तरपद में आवे तो, रु का रेफ उत्तरवर्ण के ऊपर चढ़ जाता है। जैसे सजूर्देवेन। सजूर्याति। अग्निर्दहति। वायुर्बाति। गौर्धावति। इत्यादि। शर् प्रत्याहार में रेफ भी आता है उस के परे क्या होना चाहिये सो लिखते हैं॥ २५४॥

३२७ रोरि॥ २५५। ८। ३। १४॥

जो रेफ के परे रेफ हो तो पूर्व रेफ का लोप होता है। जैसे। प्रातर्—रक्तम्। प्रात—रक्तम्। निर्—रक्तम्। नि—रक्तम्। गुरुर्—राजते। गुरु—राजते। अब लोप हो के क्या होना चाहिये सो लिखते हैं॥२५५॥

३२८ ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः ॥२५६। ६। ३। १११ ॥

जहां रेफ ढकार का लोप हो वहां उस रेफ ढकार से पूर्व अण् को दीर्घ आदेश हो जावे। दीर्घ हो कर प्रातारक्तम् । नीरक्तम्। गुरूराजते इत्यादि ॥ २५६ ॥

३२९ ढो ढे लोपः ॥ २५७ ॥ ८ । ३ । १३ ॥

ढकार के परे ढकार का लोप हो । जैसे । लिह्—क्त—सु । लिढ्—ढम् । लिढम् । गुह्—क्त—सु । गुढ्—ढम् । गुढम् । यहां ढकार के लोप में भी पूर्वअण् को दीर्घ होकर । लीढम् । गूढम् । इत्यादि उदाहरण होते हैं । अब हलादि वर्णों में खर्प्रत्याहार के परे रु को क्या होना चाहिये सो लिखते हैं ॥ २५७ ॥

३३० खरवसानयोर्विसर्जनीयः ॥ २५८ ॥ ८ । ३ । १५ ॥

खर् प्रत्याहार के परे और अवसान में रेफ के स्थान में विसर्जनीय आदेश होता है । जैसे । नदी—जस्—स्रवन्ति । नद्यः स्रवन्ति । पुरुष—सु—शेते । पुरुषः शेते । इत्यादि । स्वाभाविक रेफ । गीः स्रवति । धूः सरति । खर् प्रत्याहारमात्र में विसर्जनीय हो कर क्या २ होता है सो आगे लिखते हैं ॥ २५८ ॥

३३१ विसर्जनीयस्य सः ॥ २५९ ॥ ८ । ३ । ३४ ॥

खर् प्रत्याहार अर्थात् । छ। ठ। थ। च, ट। त, इन छः वर्णों के परे विसर्जनीय को सकार आदेश होता है । खर् प्रत्याहार में जो अन्य वर्ण रहे उन के परे दूसरा कार्य्य कहें गे । पुरुषस्—चेतति । पुरुषश्चेतति । सजूस्—चेतति । सजूश्चेतति । सजूस्—छिनत्ति । सजूश्छिनत्ति और ।वासस्—छादयति। वासश्छादयति यहां विसर्जनीय को सकार हो कर (२८४) से श होता है । उक्तस्थकारः । पुरुषस्तरति । उक्तस्—टकारः । उक्तष्टकारः । उक्तस्—ठकारः । उक्तष्ठकारः । (२८५) से स को ष होगया है ॥ २५९ ॥

३३२ शर्परे विसर्जनीयः ॥ २६० ॥ ८ । ३ । ३५ ॥

शर् जिस से परे हो ऐसा खर् प्रत्याहार परे हो तो पूर्व विसर्जनीय को विसर्जनीय हो । जैसे । पुरुषः त्साम्यति । पुरुषः त्सरुः । इत्यादि ॥ २६० ॥

३३३ वा शरि ॥ २६१ ॥ ८ । ३ । ३६ ॥

शर् प्रत्याहार के परे विसर्जनीय को विकल्प करके विसर्जनीय आदेश हो । जैसे । पुरुषः शेते । पुरुषश्शेते । कवयः षट् । कवयष्षट् । धार्मिकाः सन्तु । धार्मिकास्सन्तु । इत्यादि ॥ २६१ ॥

३३४ वा०—वा शर्प्रकरणे खर्परे लोपः ॥ २६२ ॥

जिस से परे खर् प्रत्याहार का वर्ण हो ऐसा जो शर् उस के पूर्व विसर्जनीय हो तो विकल्प करके लोप हो । जैसे पुरुषाः ष्ठीवन्ति। पुरुषा ष्ठीवन्ति । वृक्षाः स्थातारः । वृक्षास्थातारः । इत्यादि ॥ २६२ ॥

यहां खर् परक शर् प्रत्याहार में तीन २ प्रयोग बनें गे । पुरुषाः ष्ठीवन्ति । पुरुषाष्ठीवन्ति। परुषाष् ष्ठीवन्ति । इत्यादि । अब खर् प्रत्याहार में सब वर्णों के साथ विसर्जनीय की सन्धि तो दिखला दी परन्तु खर् प्रत्याहारस्थ क। ख। प। फ। इन चार वर्णों के साथ विसर्जनीय को जो २ होता है सो दिखलाते हैं ॥

३३५ कुप्वोः ᳲक ᳲपौ च ॥ २६३ ॥ ८ । ३ । ३७ ॥

कवर्ग पवर्ग अर्थात् क, ख। प। फ। इन चार वर्णों के परे विसर्जनीय को विकल्प करके क्रम से जिह्वामूलीय और उपध्मानीय आदेश हों ॥

पुरुषᳲ करोति । पुरुषः करोति । बालᳲ खिद्यते । बालः खिद्यते । पुरुषᳲ पठति । पुरुषः पठति । बालᳲ फणति । बालः फणति । इत्यादि । जिस पक्ष में जिह्वामूलीय उपध्मानीय आदेश नहीं होते उस पक्ष में विसर्जनीय ही रहते हैं ॥ २६३ ॥

३३६ सोऽपदादौ ॥ २६४ ॥ ८ । ३ । ३८ ॥

जो अपदादि अर्थात् एक पद में कवर्ग पवर्ग परे हों तो विसर्जनीय के स्थान में सकार आदेश हो जाता है । जैसे । यशः—कल्पम् । यशस्कल्पम् । पयः—कल्पम् । पयस्कल्पम् । अयः—पाशम् । अयस्पाशम् । अन्धः पाशम् । अन्धस्पाशम् । इत्यादि यहां कल्पप्पाशप् प्रत्ययों के परे (रु) के विसर्जनीय को सकार हुआ है । यहां से आगे २ जो पूर्वसूत्र से जिह्वामूलीय उपध्मानीय आदेश होते हैं उन्हीं के अपवाद सब सूत्र समझना ॥ २६४ ॥

३३७ वा०—सोपदादावनव्ययस्य ॥ २६५ ॥

जो अपदादि कवर्ग पवर्ग में विसर्जनीय को सकारादेश कहा है वह अव्यय के विसर्जनीय को न हो । जैसे । प्रातः कल्पम् । पुनः कल्पम् इत्यादि ॥ २६५ ॥

३३८ वा०—रोः काम्ये नियमार्थम् ॥ २६६ ॥

जहां काम्यच् प्रत्यय के परे विसर्जनीय को सकारादेश होता है वहां (रु) के रेफ का विसर्जनीय हो तो सकारादेश न हो । जैसे । गीः काम्यति पूःकाम्यति ॥ २६६ ॥

३३९ इणः षः ॥ २६७ ॥ ८ । ३ । ३९ ॥

इण् प्रत्याहार से उत्तर जो विसर्जनीय उन को मूर्द्धन्य षकार आदेश हो । अपदादि कवर्ग पवर्ग परे हों तो । जैसे । हविष्काम्यति । सजूष्कल्पम् । दोष्कल्पम् ! हविष्पाशम् । दोष्पाशम् । यहां अपदादि की अनुवृत्ति करने का यह प्रयोजन है कि । गुरुः कारयति। गुरुः पाठयति । यहां सकारादेश न हो। कवर्ग पवर्ग की अनुवृत्ति इस लिये आती है

कि । सर्पिस्ते । धनुस्ते । यहां मूर्द्धन्य न हो । अब यहां से आगे अवर्ण से परे विसर्जनीय को सकार और इण् प्रत्याहार से परे उसको मूर्द्धन्य आदेश सब सूत्रों में कहेंगे ऐसा अधिकार समझना ॥ २६७ ॥

३४० नमस्पुरसोर्गत्योः ॥ २६८ ॥ ८ । ३ । ४० ॥

जो कवर्ग और पवर्ग परे हों तो गतिसंज्ञक नमस् और पुरस् शब्दों के विसर्जनीय को सकार आदेश होता है । नमः—कर्त्ता । नमस्कर्त्ता । नमः—कृत्य । नमस्कृत्य । पुरस्कर्त्ता । पुरस्कृत्य । इत्यादि ॥ २६८ ॥

३४१ इदुदुपधस्य चाऽप्रत्ययस्य ॥ २६९ ॥ ८ । ३ । ४१ ॥

इकार वा उकार जिस के उपधा में हैं उस प्रत्यय भिन्न शब्द के विसर्ज्जनीय को षकार होता है । जैसे निर्-कृतम् । निष्कृतम् । निर्-पीतम् । निष्पीतम् । दुर्-कृतम् । दुष्कृतम् । दुर्-पीतम् । दुष्पीतम् । आविस्-कृतम् । आविष्कृतम् । प्रादुस्-कृतम् । प्रादुष्कृतम् । इत्यादि । यहां अप्रत्ययग्रहण इस लिये है कि । वायुः पाति । यहां षकार आदेश न हो ॥ २६९ ॥

३४२ वा०-पुम्मुहुसोः प्रतिषेधः ॥ २७० ॥

पुम् और मुहुस् इन शब्दों में भी अप्रत्यय के विसर्जनीय हैं यहां इस उक्तसूत्र से विसर्जनीय को षकाराऽऽदेश न हो । जैसे पुंस्कामः । मुहुःकामः । यहां विसर्जनीय को षकार न हो ॥ २७० ॥

३४३ तिरसोऽन्यतरस्याम् ॥ २७१ ॥ ८ । ३ । ४२ ॥

गतिसंज्ञक तिरस् शब्द के जो विसर्जनीय उन को कवर्ग पवर्ग के परे सकारादेश विकल्प करके होताहै । पक्ष में विसर्जनीय रहजावेंगे । तिरस्कृतम् । तिरःकृतम् । तिरस्कर्त्ता । तिरःकर्त्ता । तिरस्कृत्य । तिरष्पिबति । तिरःपिबति । गतिग्रहण इस लिये है कि । तिरः कृत्वा । यहां सकारादेश न हो ॥ २७१ ॥

३४४ द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे ॥ २७२ ॥ ८ । ३ । ४३ ॥

कृत्वसुच् प्रत्यय के अर्थ में वर्त्तमान जो द्वि, त्रि और चतुर् शब्द इन के विसर्जनीय को षकार आदेश विकल्प करके हो कवर्ग पवर्ग परे हो तो । द्विष्करोति । द्विःकरोति । त्रिष्करोति । त्रिःकरोति । चतुष्करोति । चतुःकरोति । द्विष्पठति । द्विःपठति । त्रिष्पठति । त्रिःपठति । चतुष्पठति । चतुःपठति । इत्यादि । यहां कृत्वोऽर्थ ग्रहण इस लिये है कि । चतुष्कपालम् । चतुष्कण्टम् । चतुष्पथम् । इत्यादि में विकल्प न हो ॥ २७२ ॥

३४५ इसुसोः सामर्थ्ये २७३ ॥ ८ । ३ । ४४ ॥

यहां विकल्प की अनुवृत्ति आती है । जो सामर्थ्य विदित होता हो तो कवर्ग पवर्ग के परे विकल्प करके इस् उस् प्रत्ययान्त शब्दों के विसर्जनीय को षकारादेश होता है । जैसे । हविष्करोति । हविःकरोति सर्पिष्करोति । सर्पिःकरोति । ज्योतिष्पश्यति । ज्योतिःपश्यति । यजुष्पठति । यजुःपठति । इत्यादि । यहां सामर्थ्य ग्रहण इस लिये है कि तिष्ठतु सर्पिः करोतु बलमन्नम् । इत्यादिकों में सापेक्ष होने से षकारादेश न हुआ ॥ २७३ ॥

३४६ नित्यं समासेऽनुत्तरपदस्थस्य ॥ २७४ ॥ ८ । ३ । ४५ ॥

जो कवर्ग पवर्ग के परे समास में, अनुत्तरपदस्थ, अर्थात् उत्तरपद में इस्, उस् न हों तो उन इस् उस् प्रत्ययान्त शब्दों के विसर्जनीय को नित्य षकार आदेश हो जावे । जैसे । सर्पिष्कुण्डिका । सर्पिष्पानम् । धनुष्करः । इत्यादि । यहां अनुत्तरपदस्थ ग्रहण इस लिये है कि । सुसर्पिःपानम् । सुसर्पिःकुण्डिका । इत्यादि में षकारादेश नहीं हुआ ॥ २७४ ॥

३४७ अतः कृकमिकंसकुम्भपात्रकुशाकर्णीष्वनव्ययस्य ॥ २७५ ॥ ८ । ३ । ४६ ॥

जो अकार से परे अव्यय को छोड के अनुत्तरपदस्थ विसर्जनीय को कृ और कमि धातु तथा कंस, कुम्भ, पात्र, कुशा और कर्णी, शब्द

परे हों तो सकार आदेश हो । जैसे । अयस्कारः । अयस्कामः । अयस्कंसः । पयस्कुम्भः । पयस्कुम्भी । यहां स्त्रीलिङ्ग में भी होता है । पयस्पात्रम् । अयस्कुशा । अयस्कर्णी । यहां अकार से परे ग्रहण इस लिये है कि । गीः कारः । पूः कारः । यहां सकार न हो । तपर करण इस लिये पढ़ा है कि । भाः कामः । यहां न हो । और अव्यय का निषेध इस लिये है कि । अन्तःकरणम् । प्रातःकालः । पुनः करोतु । समास इस लिये है कि । यशः करोति यहां न हो । अनुत्तरपदस्थ इस लिये है कि । सुवचः कामः । यहां न हो ॥ २७५ ॥

३४८ अधः शिरसी पदे ॥ २७६ ॥ ८ । ३ । ४७ ॥

जो समास में पदशब्द परे हो तो अधस् और शिरस् के अनुत्तरपदस्थ विसर्जनीय को सकार आदेश होता है । अधस्पदम् । शिरस्पदम् । अधस्पदी । शिरस्पदी ! यहां समासग्रहण इस लिये है कि । अधःपदम् यहां न हो । अनुत्तरपदस्थ ग्रहण इस लिये है कि । परमशिरः पदम् । यहां सकारादेश न हुआ ॥ २७६ ॥

३४९ कस्कादिषु च ॥ २७७ । ८ । ३ । ४८ ॥

जो २ शब्द कस्क आदि गण में पढ़े हैं उन के विसर्जनीय को यथालिखित सकार वा षकार आदेश जानना चाहिये । यहां भी एक पद से परे विसर्जनीय और उत्तरपद में कवर्ग पवर्ग पर लिये जाते हैं जैसे । कः—कः । कस्कः । कौतस्कुतः । भ्रातुष्पुत्रः शुनस्कर्णः । सद्यस्कालः । सद्यस्क्री । सद्यस्कः । कांस्कान् । सर्पिष्कुण्डिका । धनुष्कपालम् । बर्हिष्पूलम् । यजुष्पात्रम् । अयस्काण्डः । मेदस्पिण्डः । इति ॥ २७७ ॥

३५० छन्दसि वाप्राम्रेडितयोः ॥ २७८ ॥ ८ । ३ । ४९ ॥

जो प्र और आम्रेड़ित को छोड़ के कवर्ग पवर्ग परे हों तो वेद में विकल्प करके विसर्जनीय को सकारादेश होता है । जैसे । अयः—पात्रम् ।

अयस्पात्रम् । यहां प्र और आम्रेडित का निषेध इस लिये है कि । इन्द्राय सोमाः प्रदिवो दिवानाः । आम्रेडित । पुरुषः पुरुषः परि इत्यादि सकारादेश न हुआ ॥ २७८ ॥

३५१ कः करत्करतिकृधिकृतेष्वनदितेः ॥ २७९ ॥८।३।५०॥

कः, करत्, करति, कृधि, कृत, इन के परे वेदों में अदिति शब्द को छोड़ के सब शब्दों के विसर्जनीय को सकारादेश होता है । विश्वतस्करः । विश्वतस्करत् । यशस्करति । विश्वतस्कृधि । अधस्कृतम् । सहस्कृतम् । इत्यादि । जो पूर्व सूत्र से सर्वत्र विकल्प करके प्राप्त था इस लिये यह सूत्र नियमार्थ किया है । यहां अदिति का निषेध इस लिये है कि । यथा नो अदितिः करत् । यहां सकारादेश न हुआ॥२७९॥

३५२ पंचम्याः परावध्यर्थे ॥ २८० ॥ ८ । ३ । ५१ ॥

वेदों में जो अधि के अर्थ का परि उपसर्ग परे हो तो पञ्चमी के विसर्जनीय को सकारादेश होता है जैसे । विश्वतस्परि । दिवस्परि । इत्यादि । यहां पञ्चमी का ग्रहण इस लिये है कि । या गौः पर्य्येति । इत्यादि में नहीं होता परि इस लिये है कि । लोकेभ्यः प्रजापतिः समैरयत् । इत्यादि में न हो । अध्यर्थ इस लिये है कि । दिवः पृथिव्याः पर्य्योज उद्‌धृतम् । इत्यादि में न हो ॥ २८० ॥

३५३ पातौ च बहुलम् ॥ २८१ ॥ ८ । ३ । ५१ ॥

वेदों में पाति धातु के प्रयोग परे हों तो कहीं२ पञ्चमी के विसर्जनीय को सकारादेश होता है जैसे । दिवस्पातु । राज्ञस्पातु । वृकेभ्यस्पातु । इत्यादि । कहीं २ नहीं भी होता । परिषदः पातु । इत्यादि॥ २८१ ॥

३५४ षष्ठ्याःपतिपुत्रपृष्ठपारपदपयस्पोषेषु॥२८२॥८।३।५३॥

वेदों में जो पति, पुत्र, पृष्ठ, पार, पद, पयस् और पोष परे हों तो षष्ठी के विसर्जनीय को सकार आदेश होता है । जैसे । वाचस्पतिः ।

दिवस्पुत्राय सूर्य्याय । दिवस्पृष्ठे । पृथिव्यास्पृष्ठे । तपसस्पारम् । इडस्पदे समिध्यते । सूर्य्यश्चक्षुर्दिवस्पयः । रायस्पोषेण समिधा मदन्तः । यहां षष्ठी ग्रहण इस लिये है कि । मनुः पुत्रेभ्यो दायं व्यभजत् । यहां न हुआ॥२८२॥

३५५ इडाया वा ॥ २८३ ॥ ८ । ३ । ५१ ॥

जो वेदों में पूर्व सूत्रोक्त पति आदि शब्द परे हों तो इडा शब्द की षष्ठी के विसर्जनीय को विकल्प करके सकारादेश होता है। जैसे इड़ायास्पतिः । इड़ायाः पतिः । इत्यादि ॥ २८३ ॥

३५६ अम्नरूधरवरित्युभयथाच्छन्दसि ॥ २८४ ॥ ८ । २ । ५१ ॥

अम्नस् ऊधस् अवस् इन शब्दों के सकार को रु आदेश विकल्प करके होता है। जैसे अम्नस्—एव । अम्नरेव । ऊधस्—एव । उधरेव । अवस्—एव । अवरेव । इत्यादि ॥ २८४ ॥

३५७ अहन् ॥ २८५ ॥ ८ । २ । ६८ ॥

अहन् शब्द को रु आदेश होता है॥ अहन्—भ्याम् । अहोभ्याम्॥२८५॥

इस सूत्र पर यह वार्त्तिक है ॥

३५८—वा० रुत्वविधावन्होरूपरात्रिरथन्तरेषूपसंख्यानम् ॥२८६॥

रुत्व विधि प्रकरण में रूप, रात्रि और रथन्तर शब्दों के परे अहन् शब्द के नकार को, रु, आदेश होता है। जैसे । अहन्—रूपम् । अहो-रूपम् । अहन्—रात्रः । अहोरात्रः । अहन्रथन्तरम् । अहोरथन्तरम् ॥२८६॥

३५९ रोऽसुपि ॥ २८७ ॥ ८ । २ । ५१ ॥

जो सुप् से भिन्न कोई उत्तरपद परे हो तो अहन् शब्द के नकार को र् आदेश होता है। इस में यह विशेष है कि जहां रु होता है

वहां उत्व भी होता है और जहां र् होता है वहां उत्व नहीं होता। जैसे। अहन्–ददाति। अहर्ददाति। अहन्–भुङ्क्ते। अहर्भुङ्क्ते इत्यादि। और इस पर यह वार्त्तिक है॥ २८७॥

३६०–वा० अहरादीनां पत्यादिषु॥ २८८॥

जो अहन् आदि शब्दों में रेफ होता है उस के स्थान में एक पक्ष में रेफ को रेफ ही हो जावे पति आदि शब्द परे हों तो। प्रयोजन यह है कि एक पक्ष में रेफ को विसर्जनीय और एक पक्ष में रेफादेश होता है। जैसे। अहर्पतिः। अहःपतिः। गीर्पतिः। गीःपतिः। अहर्कर्म्म। अहःकर्म्म। इत्यादि॥ २८८॥

३६१–वा० छन्दसि भाषायां च प्रचेतसो राजन्युपसंख्यानम्॥ २८९॥

लौकिक और वैदिक प्रयोगों में प्रचेतस् शब्द के सकार को राजन्य शब्द के परे, रु, आदेश विकल्प करके होता है। पक्ष में रेफ आदेश हो जावे गा। जैसे। प्रचेतस्–राजन्। प्रचेताराजन्। और पूर्व वार्त्तिक से जो तीन शब्दों के परे, र, विधान किया है वह नियमार्थ है कि। अहर्–रम्यम्। अहोरम्यम्। यहां र् आदेश न हो॥ २८९॥

३६२ वसुस्रंसुध्वंस्वनडुहान्दः॥ २९०। ८। २। ७२॥

जो पदान्त और अवसान में वसु प्रत्ययान्त और स्रंसु ध्वंसु और अनडुह शब्द हों तो उन को दकारादेश होता है। वसुप्रत्ययान्त। विद्वस् आसनम्। विद्वदासनम्। सेदिवस्–आगमनम्। सेदिवदागमनम्। इत्यादि। उखास्रस्–अत्र। उखास्रदत्र। पर्णध्वस्–अत्र। पर्णध्वदत्र। इत्यादि। अनडुह्–इच्छा। अनडुदिच्छा। अनडुह्–उल्लंघनम्। अनडुदुल्लंघनम्। इत्यादि। अब जहां रु के पूर्व अच् को अनुनासिक होता है उस का प्रकरण लिखते हैं॥ २९०॥

३६३ अत्राऽनुनासिकः पूर्वस्य तु वा ॥ २९१ ॥ ८ । ३ । २ ॥

यह सूत्र अधिकार के लिये है जहां २ आगे रु विधान करेंगे वहां २ रु के पूर्ववर्ण को विकल्प करके अनुनासिक होगा ॥ २९१ ॥

३६४ आतोऽटि नित्यम् ॥ २९२ ॥ ८ । ३ । ३ ॥

जो वेदों में अट् प्रत्याहार के परे रु से पूर्व आकार हो तो उस को अनुनासिक नित्य ही हो जावे । जैसे सूर्य्यवड् महाँ असि । देवाँ आसादयादिह ॥ २९२ ॥

३६५ अनुनासिकात् परोऽनुस्वारः ॥ २९३ ॥ ८ । ३ । ४ ॥

जिस पक्ष में रु से पूर्व अनुनासिक नहीं होता वहां उस से पूर्व-वर्ण को अनुस्वार हो जाता है । जैसे । विद्वान् सन्—चिनोति । विद्वांसंश्चिनोति ॥ २९३ ॥

३६६—वा० विभाषा भवद्भगवदघवतामोच्चावस्य ॥ २९४ ॥

वेदों में विकल्प करके भवत्, भगवत्, अघवत्, शब्दों के अन्त को रु और अव भाग को ओकार आदेश होता है । जैसे । भवत्—एहि । भोएहि । भवन्नेहि । भगवत्—एहि । भगोएहि । भगवन्नेहि । अघवत् याहि । अघोयाहि । अघवन् याहि इत्यादि । अब सुट् प्रकरण को लिखते हैं जो कि इसी रु प्रकरण से संबन्ध रखता है ॥ २९४ ॥

३६७ सुट्कात् पूर्वः ॥ २९५ ॥ ६ । १ । १३५ ॥

यह अधिकार सूत्र है यहां से आगे जहां २ सुट् का विधान करेंगे वहां २ वह ककार से पूर्व होगा ॥ २९५ ॥

३६८ अडभ्यासव्यवायेऽपि ॥ २९६ ॥ ६ । १ । १३६ ॥

जिस को सुट् का आगम विधान करें । उस को अट् और अभ्यास के व्यवधान में भी ककार से पूर्व सुट् होवे २९६ ॥

३६९ संपर्य्युपेभ्यः करोतौ भूषणे ॥ २९७ ॥ ६ । १ । ३७ ॥

भूषण अर्थ में सम्, परि, उप इन उपसर्गों से, कृ धातु का कोई प्रयोग परे हो तो उस के ककार से पूर्व सुट् का आगम होता है। जैसे सम्—करोति। सम्—सुट्—करोति। उक्त (३६८) सूत्र से अट् के व्यवधान में। सम्—अ—करोत्। समस्करोत्। सम्—अकार्षीत्। समस्कार्षीत्। अभ्यास के व्यवधान में। सम्—चकरतुः। सञ्चस्करतुः। सम्—चक्रुः। सञ्चस्करुः। इत्यादि, परि—सुट्—करोति। परिष्करोति। जो यहां दन्त्य सकार को मूर्द्धन्य हो जाता है इस का विषय आख्यातिक ग्रन्थ के षत्व प्रकरण में लिखा है। परि—अ—सुट्—करोत्। पर्य्यस्करोत्। पर्य्यष्करोत्। ये दो प्रयोग षत्व के विकल्प से होते हैं उप—सुट्—करोति। उपस्करोति। उपस्कारः। उपस्कर्त्ता। उपस्कृतम्। इत्यादि ॥ २६७ ॥

अब सम् के मकार को क्या होना चाहिये सो लिखते हैं ॥

३७० समः सुटि ॥ २९८ ॥ ८ । ३ । १५ ॥

सुट् परे हो तो सम् के मकार को रु आदेश हो इस सूत्र से रु आदेश हो कर विसर्ग प्राप्त हुआ उस का अपवाद यह वार्त्तिक है ॥ २६८ ॥

३७१—वा० संपुकानांसत्वम् ॥ २६६ ॥

सम्पुम् कान् इन के रु को सकार ही होता है। रु को जो सकार किया है उस से पूर्व वर्ण के ऊपर अनुनासिक और अनुस्वार उक्त सूत्र से समझना। अनुनासिक पक्ष में। सँस्स्करोति। सँस्करोति। यहां पक्ष में एकसकार का लोप भी हो जाता है। सँस्स्कारः। सँस्कारः। जहां दो सकारों में एक को द्विर्वचन होता है वहां तीन सकार भी हो जाते हैं। सँस्स्स्कारः। अनुनासिक न हुआ तो। संस्स्कारः। संस्कारः। संस्स्स्कारः। ये छः प्रयोग होते हैं ॥ २६६ ॥

३७२ समवायेच ॥ ३०० ॥ ६ । १ । १३८ ॥

जहां समुदाय अर्थ में, कृ धातु हो वहां सम् परि उप इन से पर ककार के पूर्व सुट् आगम होता है । जैसे । संस्कृतम् । परिष्कृतम् । उपस्कृतम् । यहां भी पूर्व के समान सब उदाहरण समझना ॥ ३०० ॥

३७३ उपात्प्रतियत्नवैकृतवाक्याध्याहारेषु॥३०१॥६।१।१३९॥

प्रतियत्न अर्थात् जो किसी व्यवहार में अनेक गुणों का आरोपण करना वैकृत अर्थात् विकार को प्राप्त होना । वाक्याऽध्याहार अर्थात् जो जानने योग्य अर्थ है । उस के जानने के लिये वाक्य बोलना । इन तीन अर्थों में जो उपसर्ग से परे कृ धातु का प्रयोग हो तो ककार से पूर्व सुट् का आगम हो । प्रतियत्न । उपस्कुरुते एधोदकस्य । वैकृत । उपस्कृतं भुङ्क्ते । वाक्याध्याहार । उपस्कृतं ब्रूते । इत्यादि ॥ ३०१ ॥

३७४ किरतौ लवने ॥ ३०२ ॥ ६ । १ । १४० ॥

लवन अर्थात् काटने अर्थ में जो कृ धातु का प्रयोग हो तो उप से परे उस के ककार से पूर्व सुट् का आगम होता है । जैसे । उपस्किरति । यहां ककार से पूर्व सुट् हो के । कृषीवलः क्षेत्र मुपास्किरति । अट् के व्यवधान में । उपास्किरत् अभ्यास के व्यवधान में । उपचस्करतुः ॥ ३०२ ॥

३७५ हिंसायां प्रतेश्च ॥ ३०३ ॥ ६ । १ । १४१ ॥

हिंसा अर्थ में उप तथा प्रति उपसर्ग से परे कृ धातु का प्रयोग हो तो ककार से पूर्व सुट् का आगम होता है । जैसे । उपस्किरति जीवान् । प्रतिष्किरति जीवान् । इत्यादि ॥ ३०३ ॥

३७६ अपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने ॥३०४॥ ६ । १ । १४२॥

चतुष्पात् अर्थात् चार पग वाले घोड़ा हाथी ऊंट बकरी गैया आदि और पक्षी मोर तीतिर मुरगा आदि ये कर्त्ता हों तो अप उपसर्ग

से परे कृ धातु के ककार से पूर्व सुट् का आगम होता है। करोदना अर्थ सूचित होता हो तो ॥ ३०४ ॥

३७७ वा०—किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेष्विति वक्तव्यम् ॥ ३०५ ॥

हर्ष) आनन्दित होना। जीविका) कुछ प्राप्ति की इच्छा करना। कुलाय करण) किसी का आश्रय लेना। तीन अर्थों में उक्त सुट् का आगम होता है। हर्ष। अपस्किरते वृषोहृष्टः। बैल जब आनन्द युक्त होते हैं तो सींगों से भूमि को करोदा करते हैं। जीविका। अपस्किरते कुक्कुटो भक्ष्यार्थी। मुरगा क्षुधातुर होकर अपनी चोंच से भूमि को करोदा करते हैं। कुलायकरण। अपस्किरते श्वाऽऽश्रयार्थी। कुत्ता आश्रय अर्थात् ठहरना चाहता हुआ भूमि को करोदता है। इत्यादि ॥ ३०५ ॥

३७८ कुस्तुम्बुरूणि जातिः ॥ ३०६ ॥ ६ । १ । ४३ ॥

यहां जाति अर्थ में कुस्तुम्बरु शब्द के तकार से पूर्व को सुट् का आगम निपातन किया है। कुस्तुम्बुरु) किसी ओषधि का नाम है। उस के फल। कुस्तुम्बुरूणि फलानि। यहां जाति ग्रहण इस लिये है कि। कुतुम्बुरूणि फलानि। यहां सुट् न हुआ ॥ ३०६ ॥

३७९ अपरस्पराः क्रियासातत्ये ॥ ३०७ ॥ ६ । १ । ४४ ॥

क्रिया के निरन्तर होने में (अपरस्पराः) यह शब्द निपातन किया है। अपरस्पराः पठन्ति। निकृष्ट और उत्तम विद्यार्थी लोग निरन्तर पढ़ते हैं। यहां सातत्य ग्रहण इस लिये है। अपरपरा गच्छन्ति। अनियम से चलते हैं यहां सुट् न हुआ ॥ ३०७ ॥

३८० वा०—समो हिततततयोर्वा लोपः ॥ ३०८ ॥

हित और ततशब्द के परे सम् के मकार का लोप विकल्प करके होता है, संहितम्। सहितम्। संततम्। सततम्। इसीसतत शब्द से सातत्य बनता है। जहां लोप नहीं होता वहां मकार को अनुस्वार होके विकल्प करके पर सवर्ण भी होजाता है॥ ३०८॥

३८१ वा०—समतुमुनोः कामे लोपो वक्तव्यः ॥ ३०९ ॥

जो काम शब्द परे हो तो सम् औरतुमुन् प्रत्यय के मकार का लोप होता है। सम्—कामः। सकामः। भोक्तुम्—कामः। भोक्तुकामः। इत्यादि ॥३०९॥

३८२ वा०—अवश्यमः कृत्ये लोपो वक्तव्यः ॥ ३१० ॥

जोकृत्य प्रत्ययान्त शब्दों के परे पूर्व अवश्यम् शब्द हो तो उस के मकार का लोप हो जावे। अवश्यम् —भाव्यम्। अवश्यभाव्यम्। अवश्य-लाव्यम्। इत्यादि। इन वार्तिकों का यहां प्रसंग नहीं था परन्तु इसी (२०९) सूत्र पर थे इस लिये लिख दिये हैं॥ ३१०॥

३८३ गोष्पदं सेवितासेवितप्रमाणेषु ॥ ३११ ॥६।१।१४५॥

सेवित असेवित और प्रमाण अर्थ का वाचक (गोष्पदम्) यह निपातन किया है। सेवित। गोष्पदो देशः। असेवित। गोष्पदमरण्यम्। प्रमाण। गोष्पदपूरं वृष्टोमेघः। यहां इन अर्थों का ग्रहण इस लिये है कि। गोः-पदम् गोपदम्। यहां सुट् न हुआ। और इन अर्थों में ऐसा विग्रहहोना चाहिये कि। गावः पद्यन्ते प्राप्यन्ते यत्र तत् गोष्पदम्॥ ३११॥

३८४ आस्पदं प्रतिष्ठायाम्॥ ३१२॥ ६।१।१।४६॥

प्रतिष्ठा अर्थ में (आस्पदम्) यह निपातन किया है। आस्पदं स्थिर-मालब्धम्। यहां भी पद शब्द के पूर्वसुट् हुआ है। यहां प्रतिष्ठाग्रहण इस लिये है कि। आपदमप्रतिष्ठां प्राप्तो देवदत्तः। यहां न हुआ ॥३१२॥

३८५ आश्चर्यमनित्ये ॥ ३१३ ॥ ६ । १ । १ । ४७ ॥

अनित्य अर्थात् जो कभी २ हो सर्वदा न हो इस अनित्य अर्थ में (आश्चर्य्यम्) यह निपातन किया है (आ—चर्य्यम्) यहां चकार से पूर्वसुट् होजाता है । आश्चर्य्यमिदं कर्म्म । अनित्य ग्रहण इस लिये है कि । आचर्य्यं सत्यम् । यहां न हुआ क्योंकि सत्य का आचरण नित्य ही करना चाहिये ॥ ३१३ ॥

३८६ वर्चस्केऽवस्करः ॥ ३१४ ॥ ६ । १ । १४८ ॥

वर्चस्क अर्थात् अन्न के मल अर्थ में । अवस्करः यह निपातन किया है यहां वर्चस्क ग्रहण इस लिये है कि अवकरः । यहां न हुआ ॥३१४॥

३८७ अपस्करो रथाङ्गम् ॥ ३१५ ॥ ६ । १ । १४९ ॥

रथ के अङ्ग अर्थात् अवयव अर्थ में (अपस्कर) यह सुट् सहित निपातन किया है । यहां रथाङ्ग ग्रहण इस लिये है कि । अपकरः । यहां न हुआ ॥ ३१५ ॥

३८८ विष्किरः शकुनिर्विकिरो वा ॥३१६॥ ६ । १ ।१५०॥

शकुनि अर्थात् पक्षी अर्थ में विपूर्वक किर शब्द के ककार से पूर्व सुट् का आगम विकल्प करके निपातन किया है । विष्किरः । विकिरः । दोनों पक्षीविशेष के नाम हैं ॥ ३१६ ॥

३८९ ह्रस्वाच्चन्द्रोत्तरपदे मन्त्रे ॥ ३१७ ॥ ६ । १ । १५१ ॥

वैदिक शब्दों में ह्रस्व से परे चन्द्र शब्द होतो उस के चकार से पूर्व सुट् का आगम होता है । सुश्चन्द्रो युष्मान् । सु—चन्द्रः । सुश्चन्द्रः । ह्रस्व से परे इस लिये कहा है कि । पराचन्द्रः । इत्यादि में न हुआ । उत्तर पद ग्रहण इस लिये है कि । समास में ही सुट् का आगम हो जावे । जैसे । शुक्रमसि चन्द्रमसि । यहां न हुआ ॥ ३१७ ॥

३९० प्रतिष्कशश्च कशेः ॥ ३१८ ॥ ६ । १ । १५२ ॥

यहां प्रति पूर्वक कश् धातु का । प्रतिष्कशः । यह निपातन किया है । प्रति—कशः । प्रतिष्कशः । यहां ककार से पूर्व सुट् और सकार को मूर्द्धन्यादेश निपातन से हुआ है ॥ ३१८ ॥

३९१ प्रस्कण्वहरिश्चन्द्रावृषी ॥ ३१९ ॥ ६ । १ । १५३ ॥

ऋषि अर्थ में प्रस्कण्वः । हरिश्चन्द्रः । ये दो शब्द सुट् आगम के साथ निपातन किये हैं । अर्थात् ये दोनों ऋषि के नाम हैं । जहां और किसी के नाम होंगे वहां सुट् न होगा इत्यादि ॥ ३१९ ॥

३९२ मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयोः॥३२०॥६।१।१५४॥

मस्करः । वांस की लकड़ी । और उस को धारण करने वाला । मस्करी । सन्न्यासी । ये दोनों शब्द वेणु और परिव्राजक अर्थ में निपातन किये हैं । जहां इन से अन्य अर्थ हो वहां । मकरः । धूर्त्तता और । मकरी धूर्त मनुष्य का नाम जानना ॥ ३२० ॥

३९३ कास्तीराजस्तुन्दे नगरे ॥ ३२१ ॥ ६ । १ । १५५॥

कास्तीर और अजस्तुन्द; ये दो शब्द नगर अर्थ में निपातन किये हैं । अर्थात् किसी नगर के नाम हों वहां इन दो शब्दों के तकार से पूर्व सुट् होता है । कास्तीरं नाम नगरम् । अजस्तुन्दं नाम नगरम् । अन्य अर्थों में । कातीरम् । अजतुन्दम् । ऐसा ही रहेगा ॥ ३२१ ॥

३९४ पारस्करप्रभृतीनि च सञ्ज्ञायाम् ॥३२२॥६।१।१५६॥

जहां पारस्कर आदि शब्द संज्ञा अर्थात् किसी के नियत नाम होते हैं वहां इन में सुट् का आगम किया है । जैसे । पारस्करः; किसी देश का नाम है । अन्यत्र । पारकरः । कारस्करः । किसी वृक्ष का नाम है ।

अन्यत्र । कारकरः । रथस्या किसी नदी का नाम है । अन्यत्र । रथया । किष्कुः । एक हाथ वा बितस्ति भरनाप का नाम है अन्यत्र । किकुः । किष्किन्धा । किसी गुफा का नाम है अन्यत्र । किकिन्धा ॥ ३२२ ॥

३६५—वा० तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च ॥ ३२३ ॥

चोर और देवता अर्थ में तत् और बृहत् शब्द से कर और पति शब्द यथासंख्य परे हों तो इन को सुट् का आगम और तत् तथा बृहत् शब्द के अन्त्य तकार का लोप भी होजावे । जैसे । तत्—करः । यहां तकार का लोप और सुट् होके । तस्करः । यह नाम चोर का है । तथा । बृहत्—पतिः । यहां सुट् और त लोप होके । बृहस्पतिः । परमात्मा का वा वेदपारग ब्रह्मर्षि का नाम है ॥ ३२३ ॥

३६६—वा० प्रात्तुम्पतौ गवि कर्त्तरि ॥ ३२४ ॥

प्रउपसर्ग से परे तुम्प धातु का प्रयोग और इस धातु का कर्त्ता गौ हो तो सुट् होता है । प्र—तुम्पति । प्रस्तुम्पति गौः । इत्यादि यहां गौ, कर्त्ता इस लिये कहा है कि । प्रतुम्पति सिंहः । यहां न हुआ ॥३२४॥

३६७—वा० प्रायस्य चित्तिचित्तयोः सुडस्कारो वा ॥ २२५ ॥

जो प्राय शब्द से परे चित्ति और चित्त शब्द हो तो सुडागम अथवा प्राय शब्दको अस् आदेश हो जावे । प्राय—चित्तिः । प्रायचि—त्तम् । प्रायश्चित्तिः । प्रायश्चित्तम् । और इस सूत्र के महाभाष्य में यह भी लिखा है कि जहां किसी सूत्र वा वार्त्तिक से सुट् विधान न किया हो और वेदादि सत्य शास्त्रों में देखने में आवे तो उस को पारस्कर प्रभृति गण के भीतर ही जानों क्योंकि पारस्कर प्रभृति आकृति गण है । इति सुट् प्रकरणम् ॥ ३२५ ॥

३९८ पुमः खय्यम्परे ॥ ३२६ ॥ ८ । ३ । ६ ॥

खय् प्रत्याहार जिस से परे हो ऐसा अम् प्रत्याहार हो तो पुंस् शब्द के मकार को रु आदेश होता है । जैसे । पुम्—कामा । यहां ककार तो खय् प्रत्याहार में और उस से परे जो आकार वह अम् प्रत्याहार में गिना जाता है । पुँस्कामा । पुँस्स्कामा । पुंस्कामा । पुंस्स्कामा । पुँस्पुत्रः । पुँस्स्पुत्रः । पुंस्पुत्रः । पुंस्स्पुत्रः । पुँश्चली पुँश्श्चली । पुंश्चली । पुंश्श्चली । इत्यादि । खय् ग्रहण इस लिये है कि पुन्दासः । यहां न हुआ । और अम्परे ग्रहण इस लिये है कि । पुंक्षीरम् । यहां न हुआ । यहां एक पक्ष में सकार को द्विर्वचन हो जाता है इस प्रकरण में, रु का अधिकार है परन्तु पुंस शब्द को उक्त (संपुंका०) इस वार्तिक से सकारादेश इस लिये है कि कवर्ग पवर्ग के परे विसर्जनीय को जिह्वा-मूलीय और उपध्मानीय आदेश कहे हैं वे न हों ॥ ३२६ ॥

३९९ नश्छव्यप्रशान् ॥ ३२७ ॥ ८ । ३ । ७ ॥

प्रशान् शब्द को छोड़ के पदान्त नकार को रु आदेश होता है जो छव् प्रत्याहार से परे अम् प्रत्याहार हो तो । और पूर्व सूत्र से रु से पूर्ववर्ण को अनुनासिक और अनुस्वार हो जाते हैं । जैसे । भवान्-छिनत्ति नकार को रु रु को विसर्जनीय, विसर्जनीय को सकार सकार को श-कार होकर । भवाँश्छिनत्ति । भवांश्छिनत्ति । भवान्—चेतति । भवाँश्चे-तति । भवांश्चेतति । सन्—च। सँश्च । संश्च । भवान्—टीकते ! भवाँष्टी कते । भवांष्टीकते । भवान्—तर्पयति । भवाँस्तर्पयति । भवांस्तर्पयति । इत्यादि । यहां प्रशान् का निषेध इस लिये है कि । प्रशाञ्छिनत्ति । प्रशाञ्चेतति । यहां रु आदेश न हुआ । छव् ग्रहण इस लिये है कि भवान् वदतु । यहां न हुआ । अम् पर ग्रहण इस लिये है कि । भवान् त्सरति । यहां न हुआ ॥ ३२७ ॥

४०० उभयथर्क्षु ॥ ३२८ ॥ ८ । ३ । ८ ॥

पूर्व सूत्र से नित्य प्राप्त रु आदेश का इस सूत्र से विकल्प किया है। अम्परक छव् प्रत्याहार के परे ऋग्वेद में नकारान्त पद के नकार को रु आदेश हो विकल्प करके। जैसे। तस्मिँस्त्वा दधाति। तस्मिंस्त्वा दधाति। जिस पक्ष में रु नहीं होता वहां नकार वना रहता है। तस्मिन्त्वा दधाति। इत्यादि ॥ ३२८ ॥

४०१ दीर्घादटि समानपादे ॥ ३२६ ॥ ८ । ३ । ९ ॥

दीर्घ से परे पदान्त नकार को अट् प्रत्याहार के परे समान पाद अर्थात् एक पाद में रु आदेश हो। ऋग्वेद में विकल्प करके। जैसे। जनाँ अचुच्यवीतन। यहां रु को यकार हो के लोप हो जाता है। गिरीं रचुच्यवीतन। यहां लोप न होने से अकार में रेफ मिल गया। विकल्प ग्रहण इस लिये है कि। आदित्यान् याचिषामहे। यहां रु आदेश न हुआ रु के पूर्व अनुनासिक नित्य होता है सो लिख चुके हैं परन्तु वह दीर्घ आकार से ही परे नित्य होगा ईकार ऊकार से तो विकल्प करके होगा। परिधीँ रति परिधींरति। वसूँ रिह। वसूंरिह। त्वमग्नेवसूँ रिह। रुद्रां आदित्यांउत। इत्यादि ॥ ३२९ ॥

४०२ नॄन्पे ॥ ३३० ॥ ८ । ३ । १० ॥

जो पकारादि उत्तर पद परे हो तो नॄन् शब्द के नकार को विकल्प करके रु आदेश होता है। अन्य कार्य्य सब पूर्व के तुल्य जानना। जैसे। नॄँःपिपर्त्ति। नॄँ ᳲपिपर्त्ति। नॄंःपिपर्त्ति। नॄंᳲपिपर्त्ति। एक पक्ष में। नॄन्-पिपर्त्ति। इत्यादि यहां पकारादि ग्रहण इस लिये है कि नॄन् भोजयति यहां कुछ भी विकार नहीं होता ॥ ३३० ॥

४०३ स्वतवान् पायौ ॥ ३३१ ॥ ८ । ३ । ११ ॥

पायु शब्द परे हो तो स्वतवान् शब्द के नकार को रु आदेश विकल्प करके होता है। जैसे भुवस्तस्य स्वतवाः पायुरग्ने स्वतवाः पायुः। इत्यादि यहां सब कार्य पूर्ववत् होते हैं ॥ ३३१ ॥

४०४ कानाऽम्रेडिते ॥ ३३२ ॥ ८ । ३ । १२ ॥

आम्रेडित अर्थात् द्वितीय कान् शब्द परे हो तो कान् शब्द के नकार को रु आदेश होता है ॥ जैसे। कान्—कान्। यहां। रु होकर (संपुंकानां सत्वम्) इस वार्त्तिक से जिह्वामूलीय और विसर्जनीय को, बाध के सकारही होजाता है। कांस्कान् ॥ ३३२ ॥

इतीरितस्सन्धिविधिम्महामुनेर्निशम्य सन्धेर्विषयस्सतां मुदे।
सुखेनतच्छास्त्रप्रवृत्तयेनयामयार्य्यया कल्पितयार्य्यभाषया ॥१॥

इति श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीप्रणीतार्य्य-
भाषाविवृतिसहितस्सन्धिविषयस्समाप्तः ॥

विज्ञापन

यह पुस्तक (सन्धिविषय) जिस समय प्रथम छपा था उस समय संक्षेपता के विचार से कुछ सूत्र न्यून रक्खे थे और शीघ्रता के कारण कहीं २ अशुद्धियां भी रहगईं थीं अब द्वितीयावृत्ति में अनेक महाशयों की संमति से सन्धि संबंधी विषय शुद्ध कर पूरा छपवाया है अतएव प्रथम छपी हुई पुस्तक से अब की बार सूत्र अधिक छपे हैं।

ह० भीमसेनशर्मणः